

गुरु ज्ञान दर्पण



ब्रह्म की अनुभूति करायी जा रही है, कुछ सालों से।
भाग्यशाली अनुभव करते, महापुरुषों के, संग में आ जाने से॥

रचयिता
सन्त श्री ज्ञानानन्द जी महायज
लोहरवाड़ा निवासी

प्रकाशकः
आध्यात्मिक गौ सेवा संस्थान, लोहरवाड़ा

नक्र तुण्ड महाकाय ,सूर्यकोटि समप्रभः।
निर्विघ्नं कुरु मे देव ,सर्व कार्येषु सर्वदा ॥

माँ सरस्वती नमस्तुभ्यं, नमस्तुभ्यं वरदे काम रूपिणी ।
गुरु महिमा आरम्भ करिष्यामि, सिद्धं भवेतु सर्वदा ॥

गुरु महिमा अनोखी है, मन बुद्धि से बाहर ।
ज्ञानानन्द नेति-नेति, कहते सब का सार ॥

” श्री ”

इस जगत में गुरु की महिमा तो अतुलनीय,
अवर्णनीय, अनोखी, अनुपम, अकथनीय है। अगर गुरु
की महिमा का यशोगान करते हैं तो वो सुरज को दीपक
दिखाना ही होगा जिस प्रकार सुरज को कोई अज्ञानी
दीपक लेकर सुरज का बोध करवाना चाहे तो वो कैसे
सम्भव होगा सुरज तो दीपक को क्या सम्पूर्ण इस चराचर
जगत को ही प्रकाशित करता है, ऐसे भास्कर रूपी गुरु
की महिमा का यशोगान किस प्रकार किया जावे। कैसे
करें किन शब्दों में गाएँ, हम तो अज्ञानी बालक हैं।
फिर भी कुछ गुरु महिमा का यशोगान मैं कर रहा हूँ वो
सद्गुरु के चरण कमलो को समर्पित

गुरु साक्षात् पर ब्रह्म सच्चिदानन्द हैं इन शब्दों की महिमा का यशोगान गुरु गीता में इस प्रकार किया गया है -

गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु, गुरु देवो महेश्वरः।
गुरु साक्षात् परंब्रह्म, तस्मै श्री गुरुवे नमः॥

गुरु ही ब्रह्मा का रूप धारण करके शिष्य के अन्तःकरण में आत्मज्ञान की लौ को जाग्रत करता है। गुरु ही विष्णु का रूप धारण करके आत्मज्ञान की रक्षा करता है। गुरु ही त्रिकाल दर्शी शिव का रूप धारण करके अज्ञान रूपी दुष्ट का संहार करता है। वो ही पार ब्रह्म सद्गुरु शिष्य को आत्म का बोध करवाकर मोक्ष प्रदान करता है। श्रुति में आया है--

“गुरो गुरुणां ईश्वरो”
गुरुओं का गुरु ईश्वर है।

गुरु गीता में भी गाया है --

नित्यं ब्रह्म निराकारं निर्गुणं बोधयेत् परम् ।
भासयन् ब्रह्मभावं च द्दीपो द्दीपान्तरं यथा ॥

गुरुदेव वे हैं जो नित्य, निर्गुण, निराकार, परब्रह्म का बोध देते हुए जैसे एक दीपक दूसरे दीपक को प्रज्वलित करता है, वैसे शिष्य में ब्रह्म भाव प्रकट करते हैं।

गुरुदेव वे हैं जो नित्य, निर्गुण, निराकार, परब्रह्म का बोध देते हुए जैसे एक दीपक दूसरे दीपक को प्रज्वलित करता है, वैसे शिष्य में ब्रह्म भाव प्रकट करते हैं।

नित्य सच्चिदानन्द परम ब्रह्म अपने भक्तों का उद्धार करने के लिए प्रकट होता है।

सद्गुरु परम ब्रह्म है, महिमा अगम अपार ।
तारण इन जीवों को, जग में लिया अवतार ॥
जग में लिया अवतार, ज्ञान की लेकर नैया ।
अधमी लिया उबार, गुरु बन कर खिचैया ॥
सतगुरु सम ना देव, श्रुति बतावें यह मर्म ।
ज्ञानानन्द गुरु है, साक्षात् है परम ब्रह्म ॥

सद्गुरु तो साक्षात् परम ब्रह्म ही हैं वो ही भक्तों के कल्याण करने के लिए सगुण साकार रूप में प्रकट होता है जिसको अवतार शब्द से सम्बोधित किया जाता है-

अवतार क्या है ?

अवतार शब्द अव्य+तार शब्द से बना है अव्य जिसका अर्थ शरीर व तार का अर्थ तारने के लिए अपने भक्तों को तारने के लिये शरीर धारण करके अवतरीत होता है सो अवतार कहलाता है।

अवतार के मुख्य दो भेद माने जाते हैं।

1. नित्य अवतार
2. निमित्त अवतार

1. नित्य अवतार - नित्य अवतार साक्षात् सद्गुरु का रूप धारण करके हर घड़ी हर पल में जिज्ञासुओं के हृदय का अन्धकार का नाश करने के लिए प्रकट होता है। नित्य अवतार सद्गुरु का तीन रूपों में जिज्ञासुओं का उद्धार करते हैं।

1. उपदेशक नित्य अवतार
2. आवेशक नित्य अवतार
3. प्रेरक नित्य अवतार

उपदेशक नित्य अवतार- आचार्य का रूप धारण करके उपदेशक खुद सद् उपदेश देता है और उपदेश पर चलता भी है और अपने शिष्यों को भी उन उपदेशों पर चलाता है। उसे उपदेशक नित्य अवतार कहा जाता है।

आवेशक नित्य अवतार - जिज्ञासु के अन्तःकरण में उत्पन्न होनी वाली भ्रान्तियों व संशय को मिटाने के लिए किसी भी रूप में प्रकट होना आवेशक कहलाता है।

प्रेरक नित्य अवतार - प्रेरक नित्य अवतार वो होता है जो मानव को बुरा कार्य करने से रोकता है।

2. निमित्त अवतार - जो किसी विशेष कार्य के निमित्त प्रकट होता है, उसे निमित्त अवतार कहा जाता है जैसे-रावण का वध करने के लिए भगवान श्री राम का अवतार हुआ, कंस का वध करने के लिए भगवान श्री कृष्ण का अवतार हुआ, ये सब निमित्त अवतार कहलाते हैं। निमित्त अवतार को तीन रूपों में बताया गया है।

1. पूर्णा अवतार
2. अंशा अवतार
3. कला अवतार

पूर्णा अवतार - 16 कलाओं से सम्पन्न पूर्णा अवतार कहलाता है।

अंशा अवतार-14 कलाओं से सम्पन्न अंशावतार कहलाता है।

कला अवतार - 12 कलाओं से नीचे की कलायें जिनमें हो वो कलावतार कहलाता है।

वैसे ही पारब्रह्म सच्चिदानंद जो निर्गुण निराकार होने से जब तक कार्य नहीं करेगा, तब तक सगुण साकार रूप में प्रकट नहीं होगा, वो ही पारब्रह्म सच्चिदानंद ही शिष्यों का उद्धार करने के लिए सगुण साकार रूप में प्रकट होता है। जिस प्रकार लकड़ी में अग्नि होती है, मगर लकड़ी को जलाती नहीं है। वो ही लकड़ी जब आपस में घर्षण करती है, तो अग्नि प्रकट हो जाती है। वैसे ही पारब्रह्म प्रत्येक

“तीर्थों में जावे उण्डे छाप लगावे,
पर गंगा जमुना संतो के चरणों में सांझी आवे,
माने संतो में समागम मन भावे।”

गंगा राम जी ने भी लिखा है एक जगह:-

“अदृष्ट तीर्थ गुरु चरणों में, वाही बैठ के
नहाया।

गुरु ज्ञान का लिया झकीला, सारा पाप
मिटायाम।”

इस प्रकार से सभी तीर्थों का निवास गुरु के चरणों
में बताया है।

उन निर्वाणी महापुरुषों की सेवा का यह फल
मिलता है कि जिस फल का कभी उत्पत्ति व विनाश नहीं
होता उसका अक्षय फल मोक्ष मिल जाता है।

गुरु शब्द का अर्थ अर्थात् गुरु क्या है ?

गुरु शब्द दो अक्षरों से मिलकर बना है गु+रु गु
का अर्थ गु अक्षर “अंधकार” व रु “प्रकाश” का
बोधक है।

अर्थात् संपूर्ण अंधकार को नष्ट करने वाला या ज्ञान की
और अग्रसित करने वाला गुरु कहलाता है। गुरु गीता में
भी इसका स्पष्ट वर्णन आया है।

” गुकारं च गुणातीतं स्वकारं रूपवर्जितम्
गुणातीतम रूपं च यो ब्रूयात्सगुरुःस्मृतः॥ ”

॥ गुरु गीता-47 ॥

गुरु शब्द का “ गु ” अक्षर गुणातीत अर्थ का बोधक है, ओर रु अक्षर ‘ रूप रहित स्थिति ’ का बोधक है। ये दोनों स्थितियाँ जो देते हैं उसको गुरु कहते हैं। गुरु ज्ञान रूपी विद्या प्रदान करने वाला है। विद्या क्या है ? विद्या ‘विद्’ धातु से बनी है जिसका अर्थ है “जानना”। जो आत्म तत्त्व को जानता है वो ही सद्गुरु कहलाता है अर्थात् कहलाने योग्य है। विद्या के दो स्वरूप हैं परा विद्या व अपरा विद्या।

1. परा विद्या - परा विद्या उसे कहते हैं जिससे अपने निज स्वरूप का बोध होता है और मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस विद्या को पुस्तकों से जाना नहीं जा सकता और न ही किसी से सीखा जा सकता है, यह तो केवल वही गुरु इसके रहस्य को बता सकता है जिसने स्वयं आत्मज्ञान अर्जित किया है। ऐसी विद्या जो दे, उसे सद्गुरु कहा जाता है।

2. अपरा विद्या - वो विद्या जिसको जानकर मानव जीवन निर्वाह करने योग्य बनता है ऐसी विद्या देने वाला गुरु

कहलाता है। अतः आप गुरु और सद्गुरु में अंतर समझ गए होंगे।

सद्गुरु कौन ?

आज इस कली काल में ऐसा प्रचलन देखा जाता है कि सीधे-सादे जिज्ञासु जनों को गुमराह करने के लिए पाखण्डी सद्गुरु का चोला धारण करके सत्मार्ग से च्युत कर देते हैं, और अपने मत को श्रेष्ठ करने के लिए उन भोले जिज्ञासुओं को ऐसा उपदेश देते हैं, कि वो दूसरों की बात को न सुनें, उन पाखण्डियों को यह भय रहता है, कि कहीं उनका भाण्डा न फूट जाये। इस रहस्य का भान करवाने के लिए

एक दृष्टान्त है:-

एक राजा का पुत्र शिकार खेलने के लिए जंगल में निकलता है शिकार खेलते-2 एक घने जंगल में पहुंच जाता है, सहसा वहाँ पाँच लुटेरे उसको लूट लेते हैं, और उस राजकुमार की आँखें फोड़ देते हैं। जब वह राजकुमार इधर-उधर भटकता विलाप करता है तब उसे एक सज्जन व्यक्ति मिलता है, और उसे शीतल जल पिलाकर उसे घने वृक्ष की छाया के नीचे बिठाता है। कुछ समय बाद राजकुमार से ही पूछता है कि आपकी क्या इच्छा है, राजकुमार कहता है कि मैं घर जाना चाहता हूँ सज्जन

व्यक्ति द्वारा बार-बार उसे पूछा जाता है और राजकुमार का भी वही उत्तर होता है फिर सज्जन कहता है जैसा मैं कहूँगा वैसा तुम्हें करना पड़ेगा, बेचारा राजकुमार हां कह देता है। तब सज्जन व्यक्ति उसे सांड की पूँछ पकड़वा देता है, और कहता है, कि तुम इसको मत छोड़ना, सांड का स्वभाव तो आप जानते ही हो, ज्यों ही सांड की पूँछ राजकुमार पकड़ता है, उस राजकुमार को वह सांड घसीटता हुआ घने जंगल की झाड़ियों व पेड़ों से टकरा-टकरा कर उसको लहुलूहान कर देता है। अन्ततोगत्वा उस राजकुमार के हाथ उस सांड की पूँछ से छूट जाते हैं। वो उस घने जंगल की यातनाओं को सहता-रहता है। और अपने घर से वंचित रह जाता है। सिद्धांत यह है कि यहाँ राजा, राजकुमार, सज्जन, जंगल, पाँच चोर कौन है ? राजा है परमपिता परमात्मा, राजकुमार है जीवात्मा, जंगल है संसार, पाँच चोर है शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धा, सज्जन है पाखंडी गुरु।

1. शब्द:- जीवात्मा रूपी पुत्र को शब्द रूपी लूटेरा इस प्रकार लूटता है। जिस प्रकार शिकारी हिरण को पकड़ने के लिए मधुर वीणा बजाता है। उस वीणा की धुन को सुनकर हिरण इस प्रकार मस्त हो जाता है, कि उसे उस शिकारी के जाल का भी भान नहीं होता, और वो उस में फस जाता है। एक स्वच्छद जंगल में अटकेलियाँ करने वाले

उस हिरण की मनोरिश्ति क्या होगी ? यह तो वही जान सकता है, उसी प्रकार ऐसे पाखाण्डी गुरु शिष्य को शब्द रूपी जाल में फसाते हैं कि वो उस जाल से निकल नहीं पाता है। उसका मन विभिन्न विचारों में, विभिन्न भावों में, विभिन्न रूपों में क्षीण हो जाता है।

2. स्पर्श:- स्पर्श रूपी विषय में यह जीव-आत्मा इस प्रकार फस जाती है। जैसे हाथी को पकड़ने वाले लोग जहाँ से हाथी पानी पीने जाता है। उस रास्ते में गहरा गड्ढा खोद देते हैं और ऊपर हल्की वस्तुओं से गड्ढे को इस प्रकार बन्द कर देते हैं कि हाथी को भान न हो। और उसके ऊपर दिखावटी हथिनी रख देते हैं ज्योंहि हाथी उसे प्राप्त करने की चाह करता है गहरे गड्ढे में गिर जाता है। पन्द्रह-बीस रोज बाद हाथी की शक्ति क्षीण होने के बाद हाथी को पकड़ लेते हैं। वैसे ही जीवात्मा उस विषय में लुट जाती है।

3. रूप:- जीवात्मा रूप विषय में इस प्रकार लुटती है जैसे जलते हुए दीपक की लौ को देख पतंगा अपनी इहलीला समाप्त कर देता है।

4. गन्ध:- जीवात्मा को गन्ध विषय इस प्रकार लुटता है जिस प्रकार भँवरा पुष्प की गंध में इतना मस्त हो जाता है कि अपनी सुध ही भूल जाता है ज्योंहि सूर्यास्त

होता है पुष्प में ही बन्द हो जाता है। भँवरे में काष्ठ को काटने की क्षमता होती है लेकिन वो गंध के वशीभूत होकर कोमल पुष्प की पंखुड़ियों को नहीं काट पाता है जब वह पुष्प झाली से कटने के बाद सरोवर में पहुँच जाता है तब हाथियों द्वारा उस पुष्प को तहस-नहस किया जाता है जिससे भँवरा नष्ट हो जाता है।

5. रस:- जीवात्मा रस विषय के स्वाद में वंशीभूत होकर अपनी जान ऐसे गवा देती है जैसे मछली मछुवारे द्वारा डाले गये काँटे के आगे लगे आटे को प्राप्त करने के लिए अपनी जान गवा देती है।

पाखाण्डी धर्म के ठेकेदार व्यक्ति धैर्य विश्वास देता हुआ अपने मत को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए दूसरे ज्ञानियों का सत्संग सुनने के लिए भी मना कर देते हैं, क्योंकि सत्संग से विचार उत्पन्न होता है और विचार उत्पन्न होने से उन पाखाण्डीयों की पोल खुल जाती है।

एक दृष्टान्त में आया है:-

किसी ग्राम में एक बनियाँ आटा, घी वगैरह की दूकान करता था सो रोज ही एक जाट उसके पास घृत को बेचने के लिये लाता था और वह बनियाँ आधे दाम पर

घृत को जाट से खरीद कर लेता। एक दिन दूसरे जाट ने उस बेचने वाले जाट से पूछा तू बनियां को घृत कैसे बेचता है? उसने कहा चार सेर रूपये का। जाट ने कहा घृत का भाव आठ सेर का है वह तुमको ठग लेता है। अब जो बनियां तुम्हारे पास घृत के लिये आवे तब तुम कह देना भैंस बीमार है एक उल्लू को खरीद कर लाओ तो उसकी दवाई बनाकर भैंस को दी जाय। बनियां जब घृत के लिये उसके पास गया तब उसने उसी तरह कह दिया और इधर उल्लू वाले को सिखा दिया—बनियां तुम्हारे पास आवे तब सौ रूपया लेकर उल्लू उसको देना। बनियां उसके पास गया तब उसने सौ रूपया उल्लू का दाम बताया। घृत के लोभ से सौ रूपैया देकर बनियां उल्लू को खरीद लिया, उल्लू को लाकर बनियां, जब जाट के पास गया तब जाट ने कहा अब उल्लू की हमको कोई भी जरूरत नहीं है और घृत का दाम दूना बताया। बनियां दूकान पर आकर बैठ गया, जो कोई खरीदार आकर आटा वगैरह को पूछे वह बनियां साथ ही उल्लू को भी बता देता। यह तो दृष्टांत है। दृष्टांतों में आजकल के बद्धज्ञानी जहां पर कोई व्यवहार की वार्ता भी होती हो वहाँ पर भी वह अपना ज्ञान ही छांटने लग जाते हैं इसी वारस्ते उनका एक भी पूरा नहीं होता है।

वह अपना ज्ञान ही छांटने लग जाते हैं इसी वारस्ते उनका एक भी पूरा नहीं होता है।

ऐसे बद्धज्ञानी जिन्हें खुद को ही शान्ति नहीं है, वो दूसरों को क्या शांति देंगे ? ऐसे बद्धज्ञानी जो केवल वाचक ज्ञानी हैं, जो हरपल रागद्वेष, ईर्ष्या, काम-क्रोध में फूलते रहते हैं। वो इन दुर्गुणों के कचरे में ऐसे फस जाता है, जिस प्रकार नाली का गन्दा कीड़ा कहे कि मैं भँवरा हूँ तो यह कैसे सम्भव हो सकता है दोनों की रिश्ता में तो रात-दिन का अन्तर है। जैसे ही पाखण्डी व सत्गुरु में अन्तर होता है।

दृष्टान्त में आया है:- एक नगर में धर्म परायण, दानी, यशस्वी, पराक्रमी राजा शासन करता था। उसके शासन में सम्पूर्ण प्रजा सुखामय जीवन व्यतीत करती थी। राजा के सम्मुख जो भी याचक आता, राजा यथा-शक्ति उसकी कामना पूर्ण करता। एक बार राजा ने एक यज्ञ करवाया। यज्ञ में अनेक ऋषी, मुनी, तपस्वी, ब्राह्मण आये। राजा के द्वारा यज्ञ सम्पन्न होने पर उसके राज्य में समृद्धि दिन-दुगुनी, रात-चौगुनी हो गई। राजा इससे प्रसन्न हो एक प्रतिज्ञा करता है जो भी आत्मज्ञानी होगा उसको राज्य की और से सम्पूर्ण सुविधाएं दी जायेगी। यह घोषणा आग की तरह सम्पूर्ण राज्य में फैल गई। कुछ समय बाद उस राज्य में रहने वाला एक छोटे से गाँव के आत्मज्ञानी को

राजा सम्पूर्ण सुविधाएं प्रदान किया करता था। उस आत्मज्ञानी की सुविधाओं को देखकर उसका पड़ोसी आत्मज्ञानी से पूछता है कि राजा तुम्हें यह सुविधाएं क्यों देता है? उसके द्वारा बताया गया कि मैं आत्मज्ञानी हूँ उसने कहाँ कि राजा आत्मज्ञानी को सम्पूर्ण सुविधाएं देता है। कुछ ही समय व्यतीत होने पर गाँव का प्रत्येक व्यक्ति आत्मज्ञानी बनने का ढोंग करने लगे। एक दिन इस राज्य की स्थिति यहाँ तक पहुँच गयी कि सम्पूर्ण गाँव की व्यवस्था करने से राज-कोश खाली हो गया। इससे राजा चिन्तित हो गया। राजा की बढ़ती हुई चिन्ता को देखकर घबराते हुए उसके एक मंत्री ने राजा से चिन्ता का कारण जानना चाहा। राजा ने उस मंत्री को सारा वृत्तान्त सुनाया, वृत्तान्त सुनते ही मंत्री ने कहा कि समस्या का समाधान हो गया, आपको चिन्ता करने की आवश्यकता अब नहीं है। अगले दिन ही राजा और मंत्री मिलकर सभी आत्मज्ञानियों को राज-सभा में बुलाते हैं और मंत्री द्वारा सभी आत्मज्ञानियों को कहा कि महाराज को ऐसा असाध्य रोग हो गया है, जिसका उपचार एक आत्मज्ञानी के शरीर को धुन के तेल निकाल करके शरीर पर मालिका करे तभी ठीक हो सकता है। इतनी बात सुनकर सभी ढोंगी आत्मज्ञानी एक-एक करके वहाँ से अपनी जान बचाकर भागने लगे केवल आत्मज्ञानी ही वहाँ बचा फिर राजा ने

उसको प्रणाम करके अपने सिंहासन पर बिठाया और सभी को जेल में डाल दिया। जिस प्रकार सिंहों के झुण्डों के झुण्ड नहीं मिलते उसी प्रकार आत्मज्ञानी तो इस जगत में विरले ही मिलते हैं। पाखण्डी, मिथ्यावादी, धृतवाचक तो झुण्डों में इस जगत में मिल जाएंगे। अतः ऐसे पाखण्डी गुरु का त्याग करने में कोई हर्जा नहीं है। ऐसा ही गुरु-गीता में शिवजी ने कहा है कि:-

”ज्ञान हीनो गुरु स्त्याज्यो मिथ्यावादी विडम्बका
स्व विश्रांति न जानाति पर शान्ति करोति किम्॥”

अर्थ:- धूर्त, छली, पाखण्डी, पापी, अभिमानी गुरु को त्याग करने में कोई दोष नहीं।

कबीर ने भी कहा है:-

“ज्यारा गुरु आंधला, चेला स्वरा निरंधा।
अन्धा अन्धा ठेलिया, दोनो कूप पडंत॥”

अर्थ:- अगर अंधे की लकड़ी को अंधा पकड़ेगा तो निश्चित ही खड्गे में गिरेगा उसको कौन बचा सकता है।

इस पर एक दृष्टांत है:- एक नगरी में सूरदास रहता था। वो वहाँ पर रहने से परेशान था उसको एक ओर सूरदास मिल गया। उसने आये हुए सूरदास से पूछा भाई मेरे को इस नगर से बाहर जाना है। इसलिए मेरे को इस नगर से

बाहर पहुँचा दे तो, मैं उसे दो रोटी दूंगा। उस सूरदास ने दो रोटी के चक्कर में हॉ भर ली और कहा मैं तुम्हें नगर से बाहर पहुँचा दूंगा। दूसरे सूरदास को उस पर विश्वास हो गया और वो उस सूरदास की लकड़ी पकड़ कर उसके पीछे चलने लगा दोनों नगर के बाहर निकलने के लिए जा रहे थे। मगर उनको रास्ता दिखाई नहीं दे रहा था। वे इधर-उधर गलत रास्ते पर चल रहे थे। सूरदास ने कहा भाई तू भी तो कही अन्धा नहीं है तो उसने कहा नहीं मैं अन्धा नहीं मैं सूस्ता हूँ दोनों चलते गये और सामने अंध कूप आ गया और वे देखते-देखते कुए में गिर गये। जैसे अंधे की लकड़ी अंधा पकड़ेगा तो दोनों कुए में ही गिरेंगे। और क्या होगा? ऐसा ही होगा। जो अज्ञानी गुरु धारण करते हैं उन शिष्यों का यही हाल होगा वे यूँ ऐसे ही लख चौरासी में गिरते रहेंगे। इसलिए जिज्ञासु को चाहिए वो विवेक पूर्ण गुरु धारण करे मुख गुरु का त्याग कर देना चाहिए।

परमानन्द जी ने भी कहा है

ठण्डा धोरी ठूठ गुरू, कुआँ मैं खारा नीर।
 धर में औरत कुबारच्छया, चारो ढहे शरीर॥
 चारो ढहे शरीर, कलेजे चुभता काँटा।
 नारी को छीटकाए, बैल का आटा साटा॥
 कुआँ खुदाओ दुसरा, मीठी आवे सीर।

कुआ खुदाओ दुसरा ,मीठी आवे सीर।
परमानन्द गुरु , दुसरा कर्या आवे धीर॥

गुरु कैसा करे, गुरु कैसा हो?

पुस्तक के पूर्व में गुरु शब्द का अर्थ आप जान ही चुके हैं,
कहा भी है:- "गुरु करें जाण, पानी पीवें छाण।"

इन्सान को गुरु की भली प्रकार पहचान करनी चाहिए,
क्योंकि इन्सान को मानव-देह बार-बार मिलने वाली नहीं
है। इसलिए मानव को ब्रह्मनिष्ठ, श्रोत्रिय गुरु धारण करना
चाहिए। ब्रह्मनिष्ठ गुरु के बिना तो कल्याण भी सम्भव
नहीं इसलिए गुरु की सेवा करनी चाहिए। किसी कवि ने
दोहे में लिखा है:-

"मात-पिता मिल जावसी, लख चौरासी माँय।
गुरु-सेवा बण्ढगी, फिर मिलण की नाय॥,,

जीव मात्र को हर योनी में माता-पिता तो मिल
जायेंगे, पर गुरु-सेवा और गुरु की कृपा पुनः मिलने
वाली नहीं है। यह तो मनुष्य शरीर में ही सम्भव है गुरु की
कृपा के बिना तो सत् शस्त्रों का रहस्य भी समझ में नहीं
आता है।

इस पर एक दृष्टांत भी है:-

एक नगर में सेठ रहता था सेठ बड़ा दानी व धर्म परायण था कुछ समय व्यतीत होने के बाद सेठ अपने पुत्र के लिए धन संचय करने का विचार करता है। तो सेठ मन्दिर की गुम्बद की परछाया में एक हजार मोहरें छिपा कर अपनी बही में लिख देता है कि "मन्दिर के गुम्बद का सिर प्रातःकाल चेत्र शुक्ल अष्ठमी को तोड़े और एक हजार मोहरे पावें" धीरे-धीरे समय बीता सेठ की मृत्यु हो गई। सेठ की मृत्यु के बाद पुत्र द्वारा अत्यधिक ठग वृत्ति से उनका धन पूर्णभासी का चाँद हो गया। और पुत्र की हालत बड़ी दयनीय हो गई। पुत्र ने विचार किया कि मेरे पिता तो बहुत ही धनवान थे उन्होंने कहीं किसी को धन उधार तो दिया ही होगा। यह सोच बहियों को देखने लगा बही में उसकी ओर कुछ नहीं मिला केवल मोहरें वाली पंक्ति मिली उसे पढ़ वह बहुत प्रसन्न हुआ और तुरन्त मन्दिर की गुम्बद तोड़ने को उद्भूत हो गया। मन्दिर की गुम्बद तोड़ने पर उसे कुछ भी नहीं मिला इससे वह बड़ा दुःखी हुआ और अपने पिता का उपहास करने लगा। इससे उसके पिता के मित्र ने ऐसा न करने का कहा तो उसने उसे सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया उसे वृत्तान्त को सुन वह पहले तो पुनः उसे गुम्बद बनवाने के लिए कहता है तो वह कहता है कि मेरे पास धन नहीं है उसे सेठ का मित्र कुछ धन देकर गुम्बद का निर्माण करवाता है और उस बही में लिखी पंक्तियों को पढ़ करके उस गुम्बद की परछाई में खोदने के लिए कहता

यह कि आत्मरूपी खजाना प्रत्येक मानव के अन्तःकरण में है उसे वह शास्त्रों में बताय हुए ज्ञान से ही नहीं अपितु श्रोत्रिय सद्गुरु का सानिध्य पाकर ही प्राप्त कर सकता है। वैसे ही अपने आप शास्त्रों का अध्ययन करने से नहीं। ऐसे श्रोत्रियता के साथ-साथ ब्रह्मनिष्ठा भी होना अत्यावश्यक है। इन दोनों लक्षणों से पूर्ण गुरु के द्वारा ही जिज्ञासु का मंगल सम्भाव है। दोनों में से एक लक्षण का होने से भी कल्याण सम्भाव नहीं है। इस पर दृष्टांत सुना देता हूँ। जिससे यह बात ओर अधिक स्पष्ट हो जायेगी।

एक राहगीर अपने नगर को जा रहा था। रास्ते में एक नदी पड़ती थी। वह नदी के किनारे पहुँचा वहाँ पर एक अंधा व्यक्ति बैठा था उस राहगीर ने अंधे से कहा कि मुझे नदी के पार जाना है। तब अंधे व्यक्ति ने कहा कि तू मेरे कंधे पर बैठ जा मैं तुझे नदी पार करवा दूँगा। लेकिन राहगीर ने उस पर विश्वास नहीं किया उसने सोचा कि पानी कहा पर गहरा है। व कहां पर भंवर है तो यह कैसे नदी पार करवा सकता है। राहगीर को तब दूसरा व्यक्ति दिखाई देता है। उसकी आंखें तो सही थीं लेकिन वह पैरों से लंगड़ा था। राहगीर ने उस व्यक्ति को नदी पार उतारने के लिए कहा तो उस लंगड़े व्यक्ति ने राहगीर से कहा कि तू पचास कदम दक्षिण में चलना व दस कदम बायें मुड़कर पश्चिम में चलना ओर दायें मुड़कर पचास कदम चलना

इस प्रकार कह वह लंगड़ा व्यक्ति चुप हो गया तो उस राहगीर ने उसकी बात सुनकर विचार किया कि यह खुद ही लंगड़ा है। इसको कैसे मालूम है कि इस नदी का रास्ता किधर है। इससे तो चला भी नहीं जाता है। यह तो कभी गया ही नहीं होगा। अतः इस पर विश्वास करना ठीक नहीं है। राहगीर को थोड़ा आगे चलने पर एक और व्यक्ति दिखाई देता है। जो शरीर से हष्ट-पुष्ट था। आंखें भी सही थीं व साथ में वह अच्छा तैराक भी था। राहगीर ने उस पर विश्वास कर लिया और वह उसके साथ नदी पार करके अपने घर पहुंच गया।

इस दृष्टान्त का सिद्धान्त यह है कि जो राहगीर है वो जिज्ञासु है जो भवसागर रूपी नदी से पार होना चाहता है। अंधा इंसान वो है जो वेद वेदान्त को अच्छी तरह से जानता है। मगर ब्रह्म को देखने के लिए उसके पास विवेक रूपी आंखें नहीं हैं। अतः जिज्ञासु ने उस पर विश्वास नहीं किया। लंगड़ा व्यक्ति वो है। जिसके पास ब्रह्म को देखने के लिए विवेक रूपी आंखें तो हैं मगर वेद प्रमाण रूपी पांव नहीं हैं। अतः जिज्ञासु ने उस पर विश्वास नहीं किया तीसरा व्यक्ति वो है जो जिसके पास ब्रह्म को देखने के लिए विवेक रूपी आंखें भी हैं व वेद प्रमाण रूपी पांव भी हैं।

इसलिए उस जिज्ञासु को उस पर विश्वास हो गया और वह उसके साथ भव सागर से पार हो गया। इसलिए

दोनों लक्षण युक्त गुरु का होना आवश्यक है और वही भवसागर रूपी नदी से पार कर सकता है।

इसी प्रकार का एक दृष्टान्त मिथिला नगरी के राजा जनक का भी है:-

राजा जनक ब्रह्म अनुयायी धर्म परायण पुरुष था। उसने एक बार विशाल राज सभा का आयोजन किया और राज सभा में बैठे हुये विद्वत समाज से कहा कि मेरी हार्दिक इच्छा है कि मुझे घोड़े की रक्काब में पैर रखते ही आत्म ज्ञान हो जाये। राजा की इस बात को सुन उपस्थित विद्वान आश्चर्य चकित हो गये और ये बात अग्नि की तरह सम्पूर्ण राज्य में फैल गयी, इस बात को सुन बड़े-बड़े श्रोत्रिय विद्वान राजकिय इनाम पाने के इच्छुक दूर-दराज से लगभग 88 हजार विद्वान इकट्ठे हो गये। प्रत्येक श्रोत्रिय विद्वान बारी-बारी से राजा को उपदेश देने लगे लेकिन सफलता किसी के हाथ न लगी। राजा क्रोधित होकर सभी विद्वानों को जेल में डाल देता है। समय बीतने पर एक बार अष्टावक्र जी हठपूर्वक अपनी माँ से बार-बार अपने पिता श्री के बारे में पूछते हैं। माँ सम्पूर्ण वृत्तान्त अष्टावक्र जी को सुनाती है और कहती है कि उन विद्वानों में तुम्हारे पिता भी थे।

इतनी बात सुनते ही अष्टावक्र जी ओर उनके मामा का लड़का दोनों राजा जनक के दरबार में पहुँच जाते हैं। सभा में मंत्री, विद्वान विराजमान थे। ज्योंही अष्टावक्र जी की टेढ़ी-मेढ़ी आकृति को राजा व राज सभा में देखते ही सभी जोर-जोर से हंसने लगते हैं। उनकी देख अष्टावक्र जी और जोर से हंसने लग जाते हैं। पण्डितों ने उनके हंसने का कारण जानना चाहा तब अष्टावक्र जी ने भी उनके हंसने का कारण जानना चाहा। तब पण्डितों ने कहा कि हम तुम्हारे टेढ़े-मेढ़े शरीर को देखकर हंस रहे हैं। ओर विचार कर रहे हैं कि जिसका शरीर ही साथ न दें वो ज्ञान क्या दे सकता है। तब अष्टावक्र जी शान्त स्वभाव से बोले हैं महामुर्ख राजा आत्म ज्ञान की चाह रखता है। और सभा इन चर्मकारों की करवा रखी है। अष्टावक्र की वाणी ने सभा में बिजली बरसा दी ओर सम्पूर्ण सभा में सन्नाटा छा गया। अष्टावक्र जी ने कहा है राजन् यदि तुम आत्मज्ञान पाना चाहते हो तो इन चर्मकारों को मेरी नजर से ओझल कर दे। राजा ने ऐसा ही किया ओर अष्टावक्र जी कहने लगे हैं राजन् ब्रह्म ज्ञान लेने की विधि ज्ञात है? राजा की शर्म से आंखे नीची हो जाती हैं। अष्टावक्र जी बोले हैं राजन् पहले आप मुझे तुम्हारा तन-मन-धन-वचन अर्पण करिये, राजा जनक ने वैसा ही किया इसके तुरन्त बाद अष्टावक्र जी जनक को सिंहासन से नीचे उतरने का आदेश देते हैं और सिंहासन पर खुद जा बैठते हैं और

राजा को कहते हैं कि जहां सभी की जूतियाँ खुली हुई हैं वहाँ जाकर बैठ जा राजा वहाँ जाकर बैठ जाता है। राजा वहाँ बैठकर बार-बार आंखें मूंदता और खोलता है तब देख अष्टावक्र जी ने कहा कि खबरदार राजन् जो आपने मन से भी चिन्तन किया तो क्योंकि मन को भी आप मेरे को अपर्ण कर चुके हो। इतना कहते ही राजा जनक का मन संकल्प विकल्प से रहित हो गया और उसी समय राजा समाधिरुथ हो गये इसके बाद राजा के प्रश्न के समाधान हेतु घोड़ा मगवाया गया। और घोड़े की रकाब में पैर रखने के लिए प्रेरित किया, ज्योंही राजा प्रेरित हुआ तब अष्टावक्र जी ने कहा की अपने मन को मुट्ठी में पकड़लो तो राजा ने कहा कि महाराज मन भी मुट्ठी में पकड़ा जाता है क्या?

तब अष्टावक्र जी बोले जिस प्रकार मन को मुट्ठी में नहीं पकड़ा जा सकता उसी प्रकार यह आत्मज्ञान भी मुट्ठी की वस्तु नहीं है जो मैं इसे पकड़कर आपको दे दूँ तुम्हारे प्रश्न का जवाब तो यही है राजन्।

दृष्टान्त का सिद्धान्त यही है कि- जिस प्रकार राजा जनक को आत्मज्ञान की अनुभूति हुई उसी प्रकार पूर्ण गुरु के द्वारा यह संभव है ऐसा ही विवेक चुड़ामणि में भी कहा गया है-

“श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहृतो यो
ब्रह्मवित्तमः।

ब्रह्मपुपुपरतःशान्तो निरिन्धान

इवानलः॥,,

जो श्रोत्रिय हो, निष्पाप हो, कामनाओं से शुन्य हो, ब्रह्म वेताओं में श्रेष्ठ हो, ब्रह्मनिष्ठ हो, ईंधन रहित अग्नि के समान शांत हो अकारण दया सिंधु हो। प्रणतः(शरणापन्न) सज्जनों के बन्धु हो उन गुरु देव की विनित और विनम्र सेवा से भक्ति पूर्वक आराधना करके उनके प्रसन्न होने पर निकट जाकर ही प्राप्त किया जा सकता है।

इसी बात को भगवान श्री कृष्ण ने भी गीता के चौथे अध्याय के 34वें श्लोक में बताया है-

“तद्विद्धि प्राणिपातेन परि प्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनिः॥”

अर्थात्- हे अर्जुन तू उन ब्रह्मवेता व श्रोत्रिय महापुरुषों की विधि विधान से सेवा कर और सेवा से प्रसन्नचित हो जावे तब तू प्रश्न करना हे! गुरुदेव मैं कौन हूँ? और कहां से आया हूँ ओर कहां जाऊंगा इत्यादि प्रश्न करने पर तेरे प्रति वे महापुरुष इस तत्त्व ज्ञान को कहेंगे।

जिसकी जानकर तु मुक्त हो जायेगा इसलिए गुरु की हर प्रकार से सेवा करनी चाहिए ताकि गुरु देव प्रसन्न हो जाये तो अपना कल्याण सहज हो जाये।

गोस्वामी तुलसी दास ने भी रामायण में लिखा है-

“गुरु बिन भवनिधि तरहि न कोई
जे बिरंची शंकर सम होई॥”

अर्थात्- आत्मवेता महापुरुष के बिना कोई ब्रह्मा व शंकर भगवान के समान अमर विभूति धारण कर ले तो भी इस दुस्तर संसार से तिरना नहीं होगा।

इस पर एक दृष्टान्त भी है-

सुखदेव महामुनि बचपन में ही घर छोड़ कर चले गये। जंगल में जाकर योग साधना करके योग साधना के बल से ब्रह्मादिक लोकों में भी आने- जाने लगे, विष्णु भगवान के यहां भी आने-जाने लगे। एक दिन विष्णु भगवान के दरबार से अपने गन्तव्य की ओर आ रहे थे, तभी वो कोई बात पूछना भूल गये। जब उलट कर गये तो उन्होंने देखा कि उनके आसन्न के ऊपर अमृत के छीटे लगाये जा रहे थे, तब उन्होंने भगवान से पूछा मेरे आसन्न पर ये इस प्रकार से जो छीटे दिये जा रहे हैं उससे यह प्रतीत हो रहा है

कि मेरे बैठने से ये आसन्न अपवित्र हो गया। तब सुखदेव मुनि ने भगवान विष्णु से इसका कारण पूछा लेकिन भगवान विष्णु ने जैसे कैसे उसको टालना चाहा, लेकिन हठ में गिने जाने वाले योगी हठ के कारण सुखदेव मुनि ने भगवान विष्णु से बार-बार पूछने का आग्रह किया तब भगवान विष्णु ने कहा। आप बिना गुरु के हो इसलिए आपका यह आसन्न अपवित्र माना गया। बिना गुरु के तो पानी पीने का भी धर्म नहीं है। और उन्हें नुंगरे की उपमा दी गई है। यह सुनते ही सुखदेव मुनि को एक दम झटका लगा और वो तुरन्त ही अपने पिता वेदव्यास के पास आये और कहने लगे कि पिताजी अगर बिना गुरु के मुक्ति नहीं होती है तो आपने मुझे पहले क्यों नहीं कहा। बेटा मैं तेरे को पहले कहता तो तु मेरी बात को मानता नहीं लेकिन व्यक्ति ठोकर खाने के बाद ही संभलता है। तब सुखदेव मुनि ने पिता जी से पूछा कि अब क्या किया जावे तब पिता जी बोले कि आपको गुरु बनाना चाहिए। सुखदेव मुनि ने पिता जी से पूछा की इस समय योग्य गुरु कौन है तब वेदव्यास जी ने बताया की इस समय तो राजा जनक ही योग्य गुरु बनाने लायक है। राजा जनक का नाम सुनते ही सुखदेव मुनि ने क्रोधित होकर कहा कि मैं त्यागी और उस गृहस्थी को गुरु बनाऊं असम्भव, तब वेदव्यास जी ने कहा कि बेटा इसमें गृहस्थी और त्यागी की क्या

बात हैं। गुरु ब्रह्मवेता होना चाहिए इसमें गृहस्थी और त्यागी क्या करेगा ज्ञानी का व्यवहार प्रवृत्ति प्रदान व निवृत्ति प्रदान प्रारब्ध हैं इसलिए इस समय राजा जनक ही गुरु बनाने योग्य हैं, इसलिए तू राजा जनक को गुरु धारण कर लें। यह बात सुनकर सुखदेव मुनि घर से मिथिला पुरी की ओर जाता है। और राजा जनक के द्वार पर पहुँच जाता है। उसी ही समय पहरेदारों ने उनको रोक लिया। तब सुखदेव मुनि ने पहरेदारों से कहा कि राजा जनक को जा के कहो कि सुखदेव मुनि आप से मिलना चाहते हैं तब राजा जनक ने पहरेदारों से कहा कि उसे कह दो की सात दिन तक वहीं खड़े रहे तब सुखदेव मुनि ने ऐसा ही किया और समाधिरथ हो गये। सात दिन उनको एक-पल के समान लगे क्योंकि वो खुद महान तपस्वी थे। सात दिन के पश्चात् जब सुखदेव मुनि को राजा जनक बुलाते हैं तब राजा जनक एक नाटक रचते हैं जिससे वो अपना एक हाथ तो रानी के ऊपर और दूसरा हाथ अग्नि में रखे हुए थे। ज्योहि सुखदेव मुनि वहाँ पहुँचे तो उसे देख मन में विचार किया कि यह तो महान् गृहस्थी है बिना कुछ बोले ही वापस आने लगे तब राजा जनक ने उन्हें रुकने को कहा तभी एक द्वारपाल राजा को आकर कहता है कि महाराज नगर में आग लग गई है तब राजा जनक ने कहा कोई बात नहीं, थोड़ी देर बाद दूसरे द्वारपाल ने आ करके कहा है कि महाराज आग सम्पूर्ण गाँव में लग चुकी है तब

भी राजा यह ही जवाब देता है। जब तीसरा द्वारपाल आ करके कहता कि महाराज आगे दरवाजे तक आ गई है तब भी राजा जनक यह ही कहता है लेकिन उसकी बात सुन सुखदेव मुनि दौड़ता है क्योंकि मुनि की लंगोटी दरवाजे पर रखी हुई थी। तब राजा जनक ने कहा तुम्हारा त्याग यही है क्या, मेरा तो सम्पूर्ण नगर ही जल गया तो भी मैं शान्त बैठा हूँ हे सुखदेव मुनि क्या तुम्हारा यह त्याग है। उनकी बात सुन सुखदेव लज्जा का अनुभव करते हैं।

सिद्धांत यह है कि—

जिस प्रकार राजा जनक का सम्पूर्ण ज्ञान मुनि सुखदेव को शान्तिदायक सिद्ध हुआ। उसी प्रकार बड़े-बड़े मुनियों व अवतारियों को भी शान्ति बिना गुरु के सम्भव नहीं है। जितने भी महापुरुष, ऋषि, मुनि हुए उन्होंने भी गुरु धारण किया है।

“मेरे प्यारे गुरु तेरा दरबार निराला, वा ! क्या कहना है। जो भी आये दरबार में वो माला-माल हो गया वा ! क्या कहना है॥”

गुरु का दरबार तो ऐसे ही निराला है जो भी इस दरबार में आता है वो कर्म कंगाली से दूर होकर माला-माल हो जाता है यह गुरु के बिना सम्भव नहीं है। जिस प्रकार

दर्जी के बिना कपड़ा की सिलाई नहीं सीखी जा सकती,
कुम्हार के बिना मटका नहीं बनाया जा सकता, सुनार के
बिना आभूषण नहीं बनाया जा सकता है।

ऐसे ही हर युग में बड़े-बड़े ऋषियों, अवतारियों,
तपस्वियों ने भी गुरु धारण किया है जैसे-

ब्रह्माजी ने हयग्रीव भगवान शंकर ने अंगीरा
ऋषि को, अत्रि, कश्यप, मरिची के गुरु विखाना मुनि थे।
सप्त ऋषियों के गुरु मत्स्य अवतार, सन-कादियों के
गुरु हंस अवतार, भृगु ऋषि के गुरु वरूण ऋषि, प्रह्लाद
के गुरु दत्तात्रेय भगवान थे और रामचन्द्र जी के गुरु
वशिष्ठ मुनि, भगवान श्री कृष्ण के गुरु संदीपन ऋषि,
नारद जी के गुरु संत कुमार जी, सर्वदेव के गुरु बृहस्पति
व राक्षसों के गुरु शुकाचार्य थे और मुनि शुक्रदेव के गुरु
राजा जनक थे, जनक के गुरु अष्टावक्र मुनि थे। नचिकेता
के गुरु यमराज थे, ऐसा पौराणिक धर्मशास्त्रों में देखने में
आया है।

गुरु के बिना किये हुये शुभ कर्मों का फल पशु
योनि में जाकर भोगना पड़ता है। व अन्त में परलोक नहीं
सुधार सकता है। गुरु के बिना तो भगवान को नमस्कार
करते हैं तो वह स्वीकार्य नहीं है। अर्थात् गुरु के बिना सब
निष्फल ही है।

इस बात को गुरु गीता में भी कहा गया है-

“जपस्तपोव्रतं तीर्थ यज्ञो दानं तथैव च।
गुरु तत्त्वमविज्ञाय सर्व व्यर्थ भवेत्प्रिये॥ २॥”

गुरु गीता में आया है-

किसी भी प्रकार की विद्या हो या ज्ञान हो उसे किसी दक्ष गुरु से ही सीखना चाहिए तभी उसके सद्परिणाम आते हैं। इसी प्रकार जप, तप, तीर्थ यज्ञ, दान आदि में भी गुरु का दिशा-निर्देशन आवश्यक है। कि इनकी विधि क्या है ? अविधि पूर्वक किए गए ये सभी कर्म व्यर्थ सिद्ध होते हैं। जिसका कोई उचित फल नहीं मिलता। भगवान शिव यह स्पष्ट निर्देश दे रहे हैं कि बिना गुरु के किसी का कोई भी कार्य सफल नहीं हो सकता इसलिए गुरु तत्व को जानना अति आवश्यक है। हठयोग, प्राणायाम आदि क्रियाएँ बिना गुरु के करने पर शरीर रोग ग्रस्त हो सकता है। कई क्रियाएँ ऐसी हैं जिनसे सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं जिनका दुरुपयोग करने पर मनुष्य को उन कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है। ये सिद्धियाँ आत्मज्ञान में भी बाधाक बन जाती हैं। तबहि तो कहा है।

गुरु के बिना न ध्यान, न ज्ञान, न विद्या, न आत्म तत्व का विचार, न प्रेम, गुरु के बिना ज्ञान का विषय,

हेतू प्रयोजन और अवधि यह सब समझना असम्भव ही है।

ध्यान क्या है ? ध्यान का स्वरूप क्या है ? ध्यान का फल क्या है ? ध्यान की अवधि क्या है ? यह सब बिना गुरु के असम्भव है।

प्रेम का स्वरूप क्या है ? प्रेम का हेतु क्या है ? प्रेम फल क्या है ? प्रेम की सीमा क्या है ?

जीवन क्या है ? जीवन का हेतु क्या है ? जीवन का स्वरूप क्या है ?

इत्यादि प्रश्नों को गुरु के बिना समझना मुश्किल है। गुरु ही इन प्रश्नों का बोध करवा सकता है।

कुण्डली ने भी कहाँ है कि

गुरु के बिना संसार में, भला किसी का नाहि।
गुरु बिन जाने ना आप, गुरु बिन भय न जाहि।
गुरु बिन भय न जाहि, गुरु बिन मिले न किनारा।
आन देव की त्याग, सतगुरु की करले प्यारा।
सुघट मानुस समझो, मूर्ख समझो न सार में।
ज्ञानानन्द गुरु बिन, भला न हो संसार में।

गुरु बिना संसार में किसी का भी आज तक भला नहीं हुआ। गुरु की शरण ही सम्पूर्ण सुखों की खान है एवं दुखों की निवृत्ति का साधन है। नाना देवों की उपासना भी फलदायक नहीं है। एक गुरु की उपासना सम्पूर्ण फलदायनी है।

गुरुपदेश तो ज्ञेयशास्त्र कोटिभिः।

शास्त्रों का रहस्य गुरु के उपदेशों से ही जाना जाता है। करोड़ों ग्रन्थ पढ़ने से भी उसका ज्ञान नहीं हो सकता।

विवेक चूडामणि में भगवान् शंकरचार्य ने छठे श्लोक में फरमाया है-

“ वन्दन्तु शास्त्राणि यजन्तु देवान्
कुर्वन्तु कर्माणि भजन्तु देवताः।
आत्मैक्यबोध्येन बिना विमुक्ति न
सिध्यति ब्रह्मशतान्तरेऽपि॥

अर्थात् भले ही कोई शास्त्रों की व्याख्या करे, देवताओं का यजन करे, नाना शुभकर्म करे अथवा देवताओं को भजे, तथापि जब तक ब्रह्म और आत्मा की एकता का बोध नहीं होता तब तक सौ ब्रह्माओं के बीत जाने पर भी मुक्ति नहीं हो सकती।

इस पर एक युक्ति इस प्रकार से है कि एक नगर में एक धनवान सेठ रहता था। उसका अच्छा कारोबार चलता था, परन्तु व्यापार में घाटा लगने के कारण वह दरिद्र हो गया और परिस्थितियाँ इस प्रकार बदली कि उसे एक सेठ के यहाँ नौकरी करनी पड़ी लेकिन उससे उसका गुजारा नहीं चला तो उस सेठ को छोड़कर अन्य सेठ के यहाँ नौकरी करने लगा उस सेठ से भी उसका गुजारा नहीं चला।

ऐसे कई सेठों के नौकरी करने के उपरान्त भी उसे लाभ नहीं मिला तो वह परेशान था तब उसका एक पुराना मित्र मिला तो उसने नगर के सबसे धनाढ्य सेठ के यहाँ नौकरी करने के लिए कहा यह बात उसके समझ में आ गई और वह नगर सेठ के यहाँ नौकरी करने लगा। उसके ईमानदारी से कार्य करने से सेठ प्रसन्न हुआ और उसको बुलाकर पूछा तेरा नाम क्या है ? और कितनी तनख्वाह लेना चाहता है ? उसने कहा कि मेरे को केवल दो रोटी की आवश्यकता है मैं तनख्वाह नहीं लेना चाहता हूँ।

उसकी इस बात से सेठ अत्यन्त प्रसन्न हुआ, अब तो सेठ उसे अपना नजदीकी समझने लगा। एक दिन उस नौकर के कर्जदार आकर उससे अपना ऋण मागने लगे और उसे बुरा-भला कहने लगे ऐसा देखकर मालिक सेठ ने उनको पूछा और कहा कि तुम मेरे नौकर के साथ

ऐसा व्यवहार क्यों कर रहे हो तो उन्होंने कहा कि यह हमारा ऋणी है तब सेठ ने कहा, तुम्हारी जितनी भी बहीयाँ हैं या लेखा-जोखा है ले आओ, सेठ ने बहीयों की देखकर उसका सारा ऋण चुकता कर दिया। उसने उसका कर्जा चुका दिया।

दृष्टांत का सिद्धांत यह है कि सेठ और दुसरा कोई नहीं है। यह जीवात्मा ही है जो कुकर्म करने से दरिद्र हुआ जब परेशान होकर वह अलग-अलग देवताओं की शरण में जाने लगा, इससे केवल सकाम कर्म करने का फल मिला लेकिन उसका जन्म-मरण रूपी दरिद्रता का नाश नहीं हुआ फिर उसे सच्चे मित्र रूपी सद्गुरु का सानिध्य मिला और सद्गुरु ने कहा कि तु इस भटकने को छोड़कर सच्चे एक परमात्मा की शरण में जा और वह वहाँ जाकर निष्काम भाव से सेवा कर तब वह गुरु के कहे अनुसार सेवा करने लगा।

जब समय पाकर यमराज रूपी साहूकार कर्जा मागने आया तो परमात्मा ने यमराज से कहा कि तुम्हारे कर्ज रूपी कर्मों के बही कागज बताओ, तब यमराज ने तर्क देकर जीवात्मा को करता-भोक्ता सिद्ध किया, तब परमात्मा ने युक्ति से यह तर्क पेश किया कि यह तो हे ही नित्य शुद्ध मुक्त अकर्ता अभोक्ता तू इस पर झूठा आरोप लगाकर बयो कर्जा मागता है तब यमराज ने अनेक तर्क बताये मगर परमात्मा ने प्रमाण देकर यमराज को निरुत्तर

कर दिया और साहूकार को कर्ज (जन्म-मरण रूपी कर्ज) से मुक्त करा दिया।

इसलिए गुरुदेव इतने महान हुआ करते हैं अपनी शरण में आये शिष्य को हर प्रकार के दुःखों से छुड़ाकर परमानन्द की प्राप्ति करा देते हैं।

गुरु लौकिक धन भी दिया करते हैं और परमार्थ का धन भी दिया करते हैं शिष्य इस पर तू एक युक्ति और सुन! :-

एक नगर में एक सेठ के चार पुत्र थे। तीन पुत्र दुकान का काम करते थे एक पुत्र का लगाव साधु संतों के संतसंग में था कुछ दिनों बाद आपस में भाईयों में झगड़ा होने लगा कि हम तीनों काम करते हैं और यह निठल्ला रहता है कुछ भी काम नहीं करता।

एक दिन उनकी माँ ने सोचा कि गाँव के लोग विदेश कमाने जाया करते हैं वहाँ पर इस लड़के को भी भेज दे तो इनका झगड़ा समाप्त हो जायेगा। अतः माँ ने उसे दो हजार रुपये देकर कमाने भेज दिया। यह सब जहाज से यात्रा करके समुद्र से गुजरते थे तो बीच में एक टापू पड़ता था, वहाँ कुछ देर के लिए जहाज रुकता था। जहाज रुका तो जहाज वाले ने कहा कि यहाँ नजदीक ही गुरु का आश्रम है, जिसकी इच्छा हो वह दर्शन कर लेवे बाकी घूम लेवे।

एक घण्टा पूरा होने पर जहाज वाले ने आवाज लगाई सभी लोग आकर जहाज में बैठ गये लेकिन वह नहीं आया उसको बुलाने भेजा तो उसने कहा मैं तो यही रहूँगा और परमार्थ का धन कमाऊँगा।

वह वही रह गया तो गुरुजी ने सोचा यह परमार्थ का धन कमाना चाहता है तो उसे अपने स्वरूप का ज्ञान करा दिया फिर गुरुजी ने सोचा कि इसे लौकिक धन भी देना चाहिए, इसलिए उसे आश्रम की एक गाय चराने भेज दिया और कहा कि सामने टीले पर गाय चरा लाया कर कुछ दिन बाद गुरुजी ने कहा कि बेटा दो मिट्टी के पारसा लाना और सुबह सूर्योदय से पूर्व गाय का दूध निकाल कर समुद्र के किनारे रख देना।

गुरु के कहे अनुसार शिष्य ने ऐसा ही किया तीन दिन बाद गुरु जी ने पूछा बेटा कुछ मिला शिष्य ने कहा गुरु जी कुछ नहीं मिला।

उस दुध को पीने हंस-हंसनी का जोड़ा आया करता था एक दिन हंसनी ने हंस से कहा यह जो अपने लिए दुध रखता है यह अपना नौकर नहीं है इसको कुछ मजदूरी, अपन को देनी चाहिए अपने पास मोतीयों की कमी नहीं है अपनी चौंच में दो-दो मोती लाकर इसे देना चाहिए।

हंस के भी यह बात समझ आ गई तो हंस के जोड़े ने यही किया अब शिष्य को रोजाना मोती मिलने लगे तब गुरुजी ने कहा इन मोतीयों को गाय के गोबर से बने कड़ों में रखाकर कड़े दो तरह के होने चाहिए मोती वाले ओर बिना मोती वाले इसकी परख तूझे होनी चाहिए कुछ दिनों बाद कमाने वाले जब वापस कमाकर उसी टापू पर आ गये उन्होंने उसे भी घर चलने को कहा।

अपने गुरुजी से आज्ञा लेकर उन कड़ों को बाधाकर वह भी उनके साथ वापस गाँव आने के लिए जहाज में बैठ गया। रास्ते में भोजन बनाने का ईंधन खत्म हो गया तो जहाज के यात्रीयों ने उसे कड़े देने के लिए कहा उसने पहले तो मना ही कर दिया। लेकिन बहुत प्रयास करने पर एक कड़ा दस कड़े में देने को कहा और उसने बिना मोती वाले कड़े उनकी भोजन बनाने के लिए दे दिये।

जब सभी लोग वापस अपने गांव आ गये तो गाँव वाले उस सेठ के पुत्र का मजाक बनाने लगे यह मूर्ख है जो विदेश जाकर भी गोबर के कड़े लेकर आया है।

कुछ समय बाद उस देश का राजा उस गाँव से गुजरा तो गाँव वाले राजा को अच्छी-अच्छी भेंट देने लगे सेठ के पुत्र ने भी दो कड़े अच्छी तरह कपड़े में लपेट कर राजा की भेंट प्रदान कि राजा ने उसे खोलकर देखा तो वह नाराज हुआ लेकिन उसने विचार कर उन कड़ों को पानी

के बर्तन में इलवा दिया कुछ ही समय बाद कड़े गल गये व उनसे चमकीले मोती बहार निकल आये राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने सेठ के पुत्र को अपने दरबार में बुलाया जब सेठ का पुत्र आया तो राजा ने उसकी बुद्धिमानी की प्रशंसा की ओर उसे पूछा कि कोई परेशानी हो तो बताओ तब सेठ के पुत्र ने राजा को कहा कि मैंने मेरे साथ विदेश कमाने जो लोग गये थे उनको मैंने एक कड़े के बदले दस कड़े लेने के लिए कड़े उधार दिये थे वह कड़े मुझे दिलवाओं।

राजा ने उन सभी को बुलवा लिया और उनकी बताया कि इसके कड़ों में दो-दो मोती थे वे कड़े इसको शर्त के अनुसार प्रदान करो तो सभी ग्रामवासी एक दुसरे का मुंह ताकने लगे और उससे क्षमा मांगी।

अब उसका मान गांव में बहुत बढ़ गया। यह गुरु सेवा का ही फल है। गुरुदेव अपने शिष्यों को लौकिक व परलौकिक धन दिया करते हैं।

वाल्मीकि रामायण में प्रमाण आया है-

“स्वर्गो धानं वा धान्यं वा विद्याः पुत्रा सुखानी च।
गुरु वृत्त्यनु रोधीन न किंचिदपि दुर्लभम्॥”

गुरुजनों की सेवा में स्वर्ग, धन, धान्य, विद्या पुत्र और सुख ये सब कुछ भी दुर्लभ नहीं है। गोरवामी तुलसीदासजी ने भी रामायण ने लिखा है-

“जे जन गुरु चरण रेनु सिर धारही।

सो जन सकल वैभव बस करही ॥”

जो इंसान अपने गुरु के चरणों कि रज अपने मस्तिष्क पर धारण करता है वह संसार के सकल वैभव को अपने कब्जे में कर लेता है।

गुरु तो वह शक्ति है जो न दिखाय देने वाले परमात्मा को भी प्रत्यक्ष दिखा दिया करते हैं। जैसे हाथ पर रखा आवला प्रत्यक्ष होता वैसे ही आत्म देव का अपरोक्ष रूप से अनुभव करवा देते हैं। और हमारे अन्दर की सभी कमीयों को दिखा कर दूर कर दिया करते हैं।

इस पर एक दृष्टांत है-

एक बहुत बड़ा शिल्पकार जगह-जगह मूर्तिया बनाकर बहुत प्रसिद्धि प्राप्त कर ली वह एक दिन द्वारिका जाकर भगवान श्रीकृष्ण की मूर्ति बनाने का प्रयास किया कई बार कोशिश करने पर भी वह भगवान की मूर्ति नहीं बना पाया वह जिस रूप में भगवान की मूर्ति बनाता भगवान उस रूप को बदल देते इससे वह अपना अपमान समझ कर सोचा कि इस जीने से तो अब मर जाना अच्छा है, ऐसा विचार कर वह घनघोर जंगल में चला जाता है,

वह मरने ही वाला था, उसे एक महात्मा दिखाई दिये महात्मा ने पूछा भाई क्या कर रहे हो तो उसने जवाब दिया कि मैं मरना चाहता हूँ महात्मा ने कहा तू मरना क्यों चाहता है उसने कहा मैं बहुत बड़ा मूर्तिकार हूँ जीवन में मैंने कभी ठोकर नहीं खाई लेकिन द्वारिका में जाकर मैंने ठोकर खाई है वहा बहुत से लोगो के सामने मेरा अपमाना हुआ, मैं मूर्ति बनाता और भगवान अपना रूप बदल लेते है।

महात्मा ने कहा यह तो बहुत छोटी सी बात है यह सुनकर उसको धैर्य हुआ। महात्मा ने कहा कि एक महीने तक तुझे मेरे साथ छुटाई-पिसाई करनी पड़ेगी। शिल्पकार ने वैसा ही किया और उसे दर्पण बनाना सीखा दिया और कहा कि इसे कागज में बांधकर ले जाना और वहा जाकर इसका पर्दा हटा देना उसने वैसा ही किया और सामने जाकर भगवान से कहा कि मैंने आपकी मूर्ति बनाना सीख लिया है अब मैं बिना औजारों के आपकी मूर्ति बना सकता हूँ और उसने वह कांच सामने लगा दिया उसमें भगवान जिस भी रूप को बदलते वह उसमें भी दिखाई देने लगा तब भगवान ने कहा बेटे यह किसने बताया, उसने कहा कि भगवान मैं मरने के लिए जंगल मे गया था, तो वहा एक महात्मा मिले उन्होंने मुझे यह युक्ति बताया तब भगवान बोले की महात्मा ने जो बता दिया है उसके आगे तो मेरी भी नहीं चलती है ओर उसे गले से लगा लिया।

सतगुरु अपने शिष्यों को विवेक रूपी दर्पण दिया करते हैं जिससे अपने अवगुण भी दिखाई देते हैं और निरंजन निराकार परमात्मा भी दिखाई देता है सतगुरु महिमा पर शास्त्रों में एक श्लोक आया है-

“अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाजंन शलाकया।
चक्षुरन्मीलितमयेन तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥”

अर्थात् अज्ञान रूपी अंधेरे को दूर करने के लिए सद्गुरु ज्ञान रूपी अजंन प्रदान करते हैं जिससे वह परमात्मा स्पष्ट हो जाता है ऐसे गुरु देव को हम प्रणाम करते हैं।

गुरु का एक स्वरूप होता है, एक श्री विग्रह होता है, स्वरूप यानी जो सत् चेतन स्वरूप है, वह चेतन न किसी का विरोधी है, न किसी का सहयोगी है, मगर जिस श्री विग्रह के द्वारा शिष्य को लाभ मिलता है।

सुन्दरदास जी ने लिखा है-

“परमात्मा और परम गुरु दोनों एक समान।
सुन्दर कहत विशेष यह गुरु से पावे ज्ञान॥”

सुन्दरदास जी कहते हैं जिस आत्मज्ञान को हम पाना चाहते हैं वह श्री विग्रह से ही प्राप्त होता है यह श्री विग्रह पुरुष का भी हो सकता है वह स्त्री का भी हो सकता

है इसमें आश्रम बंधन भी नहीं है वह गृहस्थ भी हो सकता है सन्यासी भी हो सकता है जात पात का भी बंधन नहीं है किसी भी अवस्था व उम्र का हो सकता है।

आगे सुन्दरदास जी महाराज ने कहा है कि-

“परमेश्वर व्यापक सब जग, घट धारे गुरु देवा
घट-घट को उपदेश करे, सुन्दर पावे भोवा॥”

परमेश्वर सब जगह विद्यमान है लेकिन वह उपदेश नहीं कर सकता उपदेश केवल गुरुदेव ही कर सकते हैं, ऐसे घटधारी भी बहुत से होते हैं लेकिन जिसमें वेदों की महाकाव्य रूपी शब्द की सृष्टी द्वारा जिसे अपने स्वरूप का बोध हुआ है, वही गुरु कल्याण करने वाला है।

चरणदास जी ने भक्ति सागर में सात प्रकार के गुरुओं का वर्णन किया है।

पहला गुरु ढाई कहिये, ढूँजा माई जान ।
तीजा गुरु खिलवाडी, चौथा पिता पहचान ॥
चौथा पिता पहचान, पाँचवा पादा जानी ।
छठा गुरु कन फूँवा, ताहि पूजादि मानो ॥
सातवौं सतगुरु जानिये, जगसूकरे उदासा ।
मुक्ति धाम सोई देत है, कहै चरणहि दासा ॥

इन सात प्रकार के गुरुओं में से कोई पालन करने वाला है, कोई खिलाने वाला है, यानी छः गुरु तो लौकिक ज्ञान देने वाले हैं। परन्तु सातवां गुरु सद्गुरु होता है, जो सत्य का अनुभव करवाकर भव से पार लगा देता है।

गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने रामचरित मानस में लिखा है—

“गुरु बिनु भव निधि तरई न कोही
जो बिरंची शंकर सम होही॥”

अर्थात् आत्मवेत्ता महापुरुष के बिना कोई ब्रह्मा और शंकर भगवान के समान अमर विभूति धारण कर ले तो भी इस दुस्तर संसार-सागर से तिरना नहीं होगा। अनादि, अनुपम सतस्वरूप आत्मा का ज्ञान गुरु के बिना कभी नहीं हो सकता है। जितने भी बड़े-बड़े अवतारी पुरुष हुये उन सब ने गुरु धारण किया है, गुरु के बिना तो भगवान को नमस्कार करते हैं, वह भी स्वीकार नहीं है।

“बिना गुरु नमस्कृत्य हरि नमस्करोति यः।
न पश्यात् हरि रतस्य मुखं चापि कदाचन॥”

अर्थात् जो गुरु को नमस्कार नहीं करते उसके मुख को भगवान भी नहीं देखना चाहते। जो गुरु के प्रसाद को पहले ग्रहण करता है और फिर भगवान के प्रसाद को

लेता है तो उसकी महान पुण्य प्राप्त होता है इसलिए साहिब कबीर ने कहा है-

**“गुरु गोविन्द दोहू खड़े, काके लागू पाया।
बलिहारी गुरुदेव की, गोविन्द दियो मिलाया॥”**

अर्थात्:- मेरे सामने गुरु ओर गोविन्द दोनों खड़े हैं मैं सबसे पहले किसके पाँव लगू तो मैंने निश्चय किया कि अगर गुरु देव नहीं होते तो मेरे को भगवान से कौन मिलाता, इसलिए मैं तो गुरु के चरण पकड़ता हूँ श्लोक में आया है।

**“गुरु प्रसाद महात्म्यं न वक्तुकोऽपिशक्नुयात्।
व्यति क्रमेण पापास्त्य न संख्या विद्ययते नरा॥”**

अर्थात्:- श्री गुरु का महात्म्य कोई भी नहीं कह सकता है। उलटा करने से अर्थात् बिना गुरु प्रसाद लिए जो भगवान का चरणोदक लेते हैं, उनके पापों की कोई भी संख्या नहीं कह सकते इसलिए तनम न धन से सद्गुरु की सेवा करनी चाहिए।
गुरु गीता में आया है-

**“ध्यान मूलं गुरो मूर्ति, पूजा मूलं गुरुपदं।
मन्त्र मूलं गुरु वाक्यं मोक्षा मूलं गुरुकृपा॥”**

अर्थात् :- ध्यान करने योग्य केवल गुरु मूर्ति है सब पूजाओं का मूल केवल गुरु के चरणों की पूजा है सभी मंत्रों का मूल गुरु के मुखार बिन्द से निकले हुए महावाक्य है और मोक्ष का मूल कारण गुरु की कृपा है।

संत स्वामी रज्जबदासजी ने भी लिखा है “गुरु हंस के समान है, जैसे हंस दूध और जल को अलग-अलग कर देता है, वैसे ही गुरु भी देहादि असत्य है, और आत्मा सत्य है, ऐसा उपदेश करके देहात्मा की भिन्नता का विवेक कराते हुए उनकी एकता रूप भ्रान्ति को नष्ट कर देते हैं और गुरु शहद की मक्खी के समान है जैसे मधुमक्खी पुष्पों से शहद निकालती है पुष्प व वृक्षादि के टेडेपन आदि दोषों को नहीं देखती वैसे ही गुरु शास्त्र के भक्ति ज्ञान आदि उत्तम तत्त्व ही ग्रहण करते हैं।

गुरु चुम्बक के समान है जैसे चुम्बक की समीपता से पृथ्वी में स्थित लोहखण्ड चुम्बक की ओर खिंच आते हैं वैसे ही गुरु के संग से सांसारिक विषयों में आसक्त प्राणी भी गुरु की ओर खिंच आते हैं।

गुरु पारा के समान है जैसे पारा राख में पड़े हुये स्वर्ण के कण समूह को निकाल लेता है, वैसे ही गुरु असार संसार से शिष्यों के तन-मन को विषयों की आसक्ति से निकाल लेते हैं, और भगवान से जोड़ देते हैं।

गुरु एक दाई के समान है, जैसे दाई बच्चे के अंग सुधारना रूप सुन्दर कर्म करती है, वैसे ही गुरु भी शिष्यों के कर आदि क्रमेन्द्रिय ओर चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रिय रूप अंगों की चेष्टा को सुधार कर शास्त्र विहित तथा मर्यादित बनाते हैं।

कबीर दास जी ने लिखा है-

“गुरु धोबी शिष्य कपड़ा, साबुन सिरजनन हारा
प्रेम सिला धो फटकारे, निकसे ज्योति अपारा।”

अर्थात्:- गुरु धोबी के समान है, जैसे धोबी वस्त्र की रज आदि मेल को धोकर हटाता है वैसे गुरु भी प्राणी के अन्तःकरण रूपी कपड़ा के मल विक्षेप पाप को हटाता है हरि नाम रूपी साबुन लगाकर।

गुरु वैद्य के समान है, जैसे वैद्य अपनी अनुभूत औषधियों से रोगी का रोग ठीक करता है, वैसे ही गुरु भी अपने अनुभव ज्ञान द्वारा जन्म मरण रूपी रोग को मेंटता है।

गुरु मरजीवा के समान है, जैसे मरजीवा समुद्र में गोता लगाकर मोती प्राप्त करता है, वैसे ही गुरु भी समाधि अवस्था में जाकर ईश्वर का दर्शन प्राप्त करते हैं, और अपने शिष्यों को भी करवाते हैं।

गुरु तो भृंगी के समान हैं, जैसे भृंगी अपने शब्द से कीट के तन को बदल देता है, वैसे गुरु भी जीव के मन के भावों को महावाक्य रूपी धुन सुनाकर ब्रह्म स्वरूप बना देते हैं।

इस युक्ति को विस्तार पूर्वक लिखने का प्रयास है।
कीट को बदलने की भृंगी की पद्धति:-

भृंगी सर्वप्रथम घरो की दिवार आदि पर मिट्टी का घर बनाता है फिर कीटों को खोजने जाता है। कीट मिलते हैं तब उनके डंक मारता है जो कीट डंक लगाने से शिथिल हो जाता है। भृंगी उन्हें नहीं पकड़ता है और डंक लगाने से सकुचित हो जाता है, वह (भृंगी) उन्हें भी नहीं पकड़ता और जो कीट डंक लगाने से भृंगी के सनमुख खड़ा हो जाता है। अपने मुख कर देता है। उसी कीट को पकड़ कर अपने बनाये हुए घर में बंद कर देता है और उसे अपना शब्द सुनाता है।

उनमें जो कीट चित्त लगाकर सुनता रहता है वो कीट तो सुनते-सुनते भृंगी बन जाता है पर जो शब्द पर ध्यान नहीं देते वो कीट सूख कर मर जाता है।

उसी प्रकार गुरु भी अपने शिष्यों को अपने समान कर देते हैं। किन्तु जो सुनते ही सुनकर शिथिल हो जाते हैं, चित्त लगाकर नहीं सुनते और जो सुन सुकुचित हो जाते

है। अर्थात् ये तो विषय सुख छुड़वाते हैं। ऐसा विचार कर मीन हो जाते हैं। ये दोनों प्रकार के शिष्य नहीं बदलते किन्तु जो सुनते ही सनमुख होते हैं। अर्थात् सुने हुए अर्थ में संकाय रहता है, उसको पुछते हैं और सुनते रहते हैं। वे ब्रह्म का साक्षात्कार करके गुरु बन जाते हैं।

रज्जब दास जी ने कहा है:-

“गुरु तरवर अंग, डाल बहु पत्र बैन फल राम।
रज्जब छाया दी सुखी, चारव्यं सरे सु कामा॥”

अर्थ:- गुरु देव विशाल वृक्ष है। उनमें गुरु पण के बहुत गुण हैं, लक्षण हैं। वे ही डाले हैं उनके वचन ही पत्ते हैं और राम ही नाम है, गुरु वृक्ष की छाया में जो बैठते हैं वे सुखी रहते हैं और राम रूपी फल का आस्वादन करते हैं उनका मुक्ति रूपी कार्य सिद्ध होता है।

जीवात्मा ही दरिया है उसमें देह आदि जल है, ईश्वर का नाम नौका है बुद्धि ही जहाज स्तम्भ का कपड़ा है, विचार ही वायु है, उक्त जहाज से तथा उक्त विधि से प्राणी संसार सागर से पार उतरता है।

तारा, चन्द्रमा, बिजली, सूर्य, अग्नि, दीपक ये सभी असंख्य हों तो भी निरंजन राम तो गुरु ज्ञान बिना दिखाई नहीं देता है। सम्पूर्ण पृथ्वी दीपक रूप हो जाए

और सब आकाश सुर्य रूप हो जाए तो भी गुरु के ज्ञान बिना प्राणी के हृदय में तो प्रकाश नहीं होता ।

प्रथम शिष्य शरीर ज्ञान-नेत्रों से हीन होने के कारण परमार्थ पथ में अंधे ही होते हैं। फिर श्रेष्ठ गुरु अपने ज्ञान नेत्रों से उनको ज्ञान बताते हैं तब परमार्थ पथ में गुरु के संग अर्थात् गुरु उपदेश के अनुसार अपनी वृत्तिरूपि चरणों से चलकर अर्थात् उपदेश की धारण करके अपने इष्ट देव ब्रह्म का दर्शन करते हैं।

यदि शिष्य पर सद्गुरु की दया दृष्टि हो तो शिष्य के दूर रहने पर भी समीप के समान वे उसका पालन करते रहते हैं।

उदाहरण:- (कूज पक्षी के अण्डे का):- जिस प्रकार कूज पक्षी हजारों मील दूर रहकर भी अण्डे का पालन अण्डाकार वृत्ति से करता रहता है।

उसी प्रकार शिष्य सद्गुरु की दया दृष्टि में रहे उनका हृदय कभी भी मलीन नहीं हो सकता। देखों इसमें कच्छपी के अण्डे का दृष्टान्त प्रसिद्ध है।

कच्छवी अण्डों से दूर होते हुए भी उनको देखती रहती है। उसकी दृष्टि मात्र से ही अण्डों का पालन होता है।

कच्छवी का अण्डा दृष्टि से, कूजों का वृत्ति से, कुक्कट आदि पक्षियों के अण्डे पंखों की वायु से, पोख (पोषण) पाते हैं उक्त तीन प्रकार के अण्डे के समान ही गुरु के भाव से शिष्य उत्पन्न होते हैं।

यदि इधर उष्ण प्रदेश में कुंज पक्षी मर जाए तो वहा हिमालय पर रखे हुए अण्डे गल जाते हैं। वैसे ही यदि सद्गुरु अपनी वृत्ति से शिष्य को त्यागता है तो शिष्य की भक्ति, ज्ञानादि खेती उत्पन्न नहीं होती।

प्रश्न :- कहीं लोग अपनी पूजा आरती करवाते सो क्या सही है?

उत्तर :- वो खुद अपनी पूजा आरती नहीं करवाते पर उनके भक्त उनकी पूजा करते उनमें चेतन परमात्मा का प्रकाश्य हुआ है इसीलिए पूजा करते सो गलत नहीं है।

साहिब कबीर ने कहा :-

“सब घट मेरा साईयाँ, सूनी सहज न कोड़ी
बलहारी उन घट, की जा घट प्रकट होई।”

जिस घट में परमात्मा का प्रकट होना लिखा है उन घट की सेवा से तो भगवान की सेवा होगी।

जब लोग लाख पर दीपक जलाकर और कोटि पर ध्वज चढ़ाकर, सुख का परिचय देते हैं। तब जिन गुरु देव में गोविन्द विराजमान है। उनकी आरती अवश्य करनी

चाहिए। पूर्वकाल में यह प्रथा थी कि लखपति होने पर अपने घर की छत पर आकाशीय दीप जलाया करते थे। और करोड़ पति होने पर ध्वजा चढ़ाई रखते थे।

जब नर नृपति हो जाता है, तब उस पर श्वेत छत्र रहता है, चँवर ढीले जाते हैं। गुरु के हृदय में तो परमात्मा स्थित है फिर उनके नख शिखा तक के अंगों की आरती क्यों न की जाए। फिर आरती जो कर उनके नख से शिखा तब अंगों को ही आरती समान जो कर अर्थात् सावधान करके गुरु सेवा में सलंगन करना रूप आरती क्यों न की जाए?

जैसे :- राजकुमार बालक प्रधानमंत्री की गोद में हो तो उस बालक को प्यार से सभी उसे नमस्कार करते हैं। वैसे गुरु के हृदय में गोविन्द होने से सभी के नमस्कार के पात्र हैं। उन्हें प्रणति करनी चाहिए।

वेद वचन रूप पूँजी जिन कागजों में होती है, व कागज भी पूजे जाते हैं, तब उनके साथ भगवान हैं। उन गुरु देव की पूजा क्यों नहीं? गुरु की पूजा अवश्य करनी चाहिए।

जो पत्थर, काष्ठ, मिट्टी, सुवर्ण आदि धातुओं की बनी जड़ मूर्ति जिसके हृदय में हरि नाम नहीं होता, उनमें मंगल कार्य करते हुए उसमें आरती करते हैं, तब चेतन

और हरि नाम चेतन से युक्त हृदय वाले सद्गुरु की आरती क्यों नहीं करनी चाहिए? अर्थात् अवश्य ही करनी चाहिए

राजा जब साधारण शिला की मूर्ति बना देता है तब सब उनको प्रणाम करते हैं उसकी पूजा करते हैं फिर सद्गुरु तो अपने उपदेशों द्वारा शिष्यों को ठीक करके परमात्मा से मिला देता है। वे पूजा के पात्र क्यों न होंगे? सद्गुरु की पूजा अवश्य करनी चाहिए

गुरु व शिष्य दोनों में अश्रद्धा भाव नहीं होने चाहिए नहीं तो बीच मझदार में डूब जाएंगे।

“गुरु लोभी चेला लालची, दोनों स्तेले ढावा
बिच मजारे डूबसी, बैठ पत्थार की नावा।”

(गुरु कहे मुझे सब कुछ दे दो और चेला कहे कुछ भी नहीं दूंगा। तो समझलों दोनों (गुरु व चेला) की नाव भावसागर में डूब जाएगी।

गुरु तो प्रतिष्ठा का भूखा और शिष्य विषयों का भूखा दोनों भाग्य हीन मिल जाते हैं। तब गुरु द्वारा शिष्य को जो दीक्षा मिलती है सो दीक्षा होकर मानों दावाग्नि लगी है। ऐसा ज्ञात होता है, जैसे समीप जल न हो तो वन की अग्नि नहीं बुझती वैसे ही इनके मन के समीप सतीष न होने से इनकी उक्त तृष्णा नष्ट नहीं होती, सदा तृष्णा से जलते रहते हैं।

तृष्णा रूपी भूख से युक्त गुरु व शिष्य का मिलन
वैसाख मास में बांस की डाली के घिसने के समान होता
है। वैसाख में बांस की डाली वायु के वेग से घिसती है, तब
अग्नि प्रकट होकर बांस जल जाते हैं। वैसे ही गुरु शिष्य
अपनी आपसी की बोल चाल द्वारा क्रोधाग्नि प्रकट होने
से जल कर मरते हैं।

चकमक का आघात पत्थर पर लगता है। तब
किंचित् अग्नि निकलकर बहुत हो जाती है। सूत से काष्ठादि
को जलाता है, यह चकमक और पत्थर मिलने का महात्म्य
है, वैसे ही गुरु शिष्य की बातों से क्रोधाग्नि चमक आती
है और दोनों के हृदयों को जलाती है। यही उनके मिलन
का महात्म्य है। ईश्वर ऐसे गुरु शिष्य को न मिलावे।

गुरु के लक्षण गुरु में नहीं तब परब्रह्म प्राप्ति रूप
व्यापार तो बनता नहीं, केवल शिक्षा ले करके पेट भरने
का मार्ग खुला है।

गुरु के अन्तःकरण रूपी घर में ज्ञान धन हो तो
शिष्य को प्राप्त हो और शिष्य भी शिष्य पने के सुन्दर
लक्षणों से युक्त हो जो ज्ञान धन ले सके किंतु जब दोनों
ही भाग्य हीन मिल जाए तब गुरु क्या दे और शिष्य क्या
ले। कहो! नारी से नारी मिले तब पुत्र कैसे होगा, वैसे ही
सद्गुरु के बिना सभी शिष्य नपुसंको की नारियों के

समान है, जैसे नपुंसक नारी के संतान नहीं होती वैसे ही सद्गुरु के बिना शिष्यों को ज्ञान नहीं होता।

बकरी के गले के स्तनों में दूध नहीं होता, वे तो देखने मात्र के ही होते हैं, उनको ग्वाला दुह करके पीना चाहे तो क्या पीयेगा! वैसे यदि शिष्य सम मिल जाए और गुरु आशा द्वारा भुखा मिल जाए तो उक्त अजागल स्तन और ग्वाला की सी ही गति उनकी होगी।

स्वार्थी गुरु घर-घर जाकर दीक्षा देते हैं किन्तु उनके उपदेश से कोई भी शिष्य अज्ञान बन्धन से नहीं निकलता कारण गुरु और शिष्य दोनों ही सांसारिक विषयों के लोभी हैं। इसलिए दोनों का ही मुक्ति रूप भला नहीं होता।

गुरु ही शिष्य की रक्षा करता है। कोयल के अण्डे काक के घर में रहते हैं और अपने से अन्य काकों की सेवा से बड़े होते हैं, किन्तु कोयल उनका भाव से ही पालन करती है। और बड़े होने पर ले जाती है। वैसे ही शिष्य संसार में रहते हैं; किन्तु गुरु उनका भाव से पालन करते हैं। और वैराग्य हो जाने पर ले जाते हैं। कोयल अपने अण्डे काक के आलम में छोड़ आती है। काक उनको अपने जान कर पालन है व करते कुछ बड़े होने पर कोयल उनके पास जाकर अपनी बोली सुनाती रहती है और जब वो उड़ने लगते हैं तब काक न होने के समय उन्हें साथ ले जाती है।

गुरु तो निःस्वार्थी होते हैं जैसे हुमा पक्षी की छाया सिर पर पड़ जाती है वो मनुष्य राजा बन जाता है।

वह पक्षी अपने स्वार्थ के लिए किसी पर छाया नहीं पटकता। वैसे गुरु भी अपने स्वार्थ के लिए उपदेश नहीं देते। हुमा और गुरु इन दोनों में से कौन-सा क्या कमाता है। कुछ भी नहीं कमाता अतः स्वार्थ रहित है। रात्रि में जुगनू बहुत दिखाई देते हैं किन्तु उनसे अंधकार का नाश होकर नेत्रों को स्पष्ट वस्तु दर्शन का आनन्द नहीं मिलता। एक सूर्य के उदय होने से ही त्रिलोक का अंधकार नष्ट होकर स्पष्ट भासने लग जाता है। स्पष्टता का आनन्द प्राप्त होता है। वैसे ही गुरु तो बहुत मिलते हैं। किन्तु उनसे शिष्यों को अज्ञान नाश द्वारा आनन्द नहीं मिलता वह तो सद्गुरु से ही प्राप्त होता है।

गायक तो बहुत मिलते हैं किन्तु दीपक राग गाने से दीपक किसी विरले से ही जलता है। वैसे ही गुरु भी बहुत मिलते हैं। शिष्य भी बहुत हैं। किन्तु शिष्य के हृदय में ज्ञान दीपक जलाने वाला कोई विरला सद्गुरु होता है। और व किसी भाग्यशाली शिष्य को मिलते हैं। बहुत से गुरु रूप तो पर्वत पत्थर के समान होते हैं। जैसे पर्वत के पत्थर से लोहा नहीं बदले तो वैसे ही उनसे शिष्य नहीं बदलता, किन्तु कोई विरला ही सद्गुरु पारस के समान होते हैं। पारस से लोहा, सोना हो जाता है। वैसे सद्गुरु से

ज्ञान द्वारा शिष्य का हृदय बदल जाता है। भेद से अभेद में आ जाता है। जो उक्त रीति से शिष्य को बदल देते हैं।
उन्हीं का यश गान किया जाता है।

गुरु शिष्य को अपने सानिध्य में रखकर उनकी सारी गलतियाँ निकाल देते हैं।

गुरु कुम्भकार (कुम्हार) के समान होते हैं और शिष्य कुम्भ के समान होता है जैसे कुम्भकार घड़े के चोट लगाकर उस का दोष निकालता है किन्तु पहले भीतर कपड़ा युक्त हाथ से सहायता करता है। तब बहार से थपी की चोट लगाता है। वैसे ही गुरु भीतर से हित चाहते हुए ही शिष्यों को साधना कष्ट देते हैं।

कुम्भकार मिट्टी पर नाना प्रकार के आघात लगाता है किन्तु क्रोध नहीं करता। कारण कुटना, पीटना, तपना आदि कष्टप्रद व्यवहार करे बिना तो पात्र बनता ही नहीं। वैसे ही गुरु क्रोध न करके ही शिष्य पर कठोर वचन और साधन कष्ट देना आदि व्यवहार करते देखे जाते हैं। कारण-बिना उक्त व्यवहार के शिष्य ब्रह्म का साक्षात् करने के योग्य नहीं होता है। जैसे लुहार लौह पर चोट मारते समय यह नहीं करता कि यह तो नष्ट हो जाएगा। वह तो लौह को पहले से अच्छा बनाने की भावना से ही तपा-तपा कर श्रेष्ठ बनाता है। वैसे ही गुरु शिष्य को

साधना से कष्ट देते समय यह शंका नहीं करते कि इसको हानि होगी वे तो दया पूर्वक वचन बाण मारते हैं और ज्ञानोक्ति से तपा-तपा कर ब्रह्म निष्ठ बना देते हैं।

स्वर्णकार चाँदी के मेल को निकालने के लिए उसमें शीशा डालते हैं। शीशा चाँदी के कलंक रूपी मेल को निकाल लाता है इस प्रकार सोनी की हाट पर जाकर चाँदी निर्मूल होती है, वैसे ही शिष्य का मन सद्गुरु के उपदेश से निर्मल होता है। सद्गुरु के शब्द मन के कलंक रूपी मेल को निकाल देते हैं।

मणि समुह छेद करे बिना कंठ में नहीं बांधा जाता वैसे ही साधना संकट सहन करे बिना गुरुओं की ज्ञान गाँठ में मन भली प्रकार नहीं बंधता। अतः शिष्य साधन संकट से ही श्रेष्ठ बनता है।

जैसे - अनल पक्षी हाथियों को लेकर आकाश मार्ग से उड़ता है। तब हाथियों का पक्षी रूप स्थान छूट जाता है, वैसे ही पंच तत्त्व रूप पंच ज्ञानेन्द्रियों और मन की सद्गुरु उपदेश द्वारा उठाकर ब्रह्म में ले जाते हैं। तब उसका माया रूप स्थान छूट जाता है। अनल पक्षी का परिचय अनल पक्षी आकाश में रहता अण्डा देता है। तब अण्डा पृथ्वी पर आता है। उस अण्डे से जन्मा हुआ बच्चा खाने के लिए कुछ हाथियों को अपने पंजों में पकड़ कर पुनः आकाश को चला जाता है।

जो शिष्य गुरु के वचन पर विश्वास नहीं करता,
व बहुत उपदेश करने के बाद भी एक भी शब्द नहीं समझ
पाता है तो वो शिष्य खाली ही रह जाता है।

दोहा

“सद्गुरु बहुत समझायो, शब्द लाग्यो नहीं अंग।
रिती रहग्योर सिद्धा, सदा तेल के संग ॥”

अर्थ:- जिस प्रकार से पहले जो लोग एक नगर
से दूसरे नगर तक सूचना पहुँचाने के लिए एक सदेश वाहक
होते थे। जो सदेश देने के लिए रात्री भर भी चलकर सदेश
पहुँचाते थे। अतः उन्हें रात्री में मार्ग में प्रकाश कि जखरत
होती थी तो वे अपने पास सिद्धा में तेल लेकर चिराग
जलाकर जाया करते थे जिससे कि सिद्धा का तेल चिराग
में ही सम्पूर्ण हो जाता था। और सिद्धा खाली का खाली
ही रह जाता था। उसी प्रकार से साखी में बात आई है कि
ऐसे गुरु द्वारा बहुत से शब्दों का ज्ञान कराए जाने के
बाद भी शिष्य उन शब्दों को धारण नहीं कर पाता है वे
इधर का सून उधर को निकाल देता है। जिससे वह शिष्य
खाली ही रह जाता है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा कि:-

“फूले फरई न बेंत, जदपि सुधा वरषहिं जलद ।
मुख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहिं विरंचि समद ॥”

अर्थ:- वे शिष्य केवल बेंत के वृक्ष के समान ही है जो चाहें बादल अमृत ही क्यों न बरसाए, मगर बेंत के वृक्ष के कोई फल व फूल नहीं लगते, उसी प्रकार गुरु के रूप में ब्रह्माजी ही क्यों नहीं मिल जाए, ऐसे मूर्ख शिष्य के हृदय में ज्ञान का संचार नहीं होता।

“ढीनी थी लागी नहीं, बास नली में फूका
गुरु विचार क्या करे, चेला मही चूका।”

अर्थ:- खुद शिष्य ही चूक जाता है। उसका गुरु विचार करके भी क्या करे। जिस प्रकार से पत्थर पर बरसात का कोई उपयोग नहीं होता। उसी प्रकार ब्रह्मानन्दजी महाराज ने भजन में कहा है:-

“कि बोधा नहीं अपने आपका, गुरु ज्ञान क्या
करे।

निज स्वरूप को जाना नहीं, तो वेद पुराण क्या
करे।”

गुरु का क्या कर्तव्य है:-

“माडूक्य” उपनिषद् में लिखा है कि ज्ञानी गुरु उस श्रद्धा पूर्वक, शांत, चित्त एवं तितिक्षा ओर साधना

निष्ठशिष्य को ब्रह्म विद्या का उपदेश करे जिससे वह
अविनाशी सत्स्वरूप आत्मा को जान ले।

“तस्मैस विद्वानुपसन्नाय सन्त्यक प्रशान्त चिन्ताय
शमान्विताय।

येनाक्षरं पुरुषं वेदसत्यं प्रोताय तां तत्त्वतो बलं विद्याम्॥”

“विवेक चुड़ामणी” में भी आया है:- शरणागति की इच्छा
वाले उस मुमुक्षु, आज्ञाकारी, शान्तचित्त, समाधि सयुक्त
सांध्य शिष्य को गुरु कृपा 'इस प्रकार' तत्त्वोपदेश करें-

“विद्वान्स तस्मा उपसत्तिमीयुः,

मुमुक्षवे साधु यथोक्त कारिणे।

प्रशान्त चित्ताय शमान्विताय, तत्त्वोपदेशं कृपयैव
कुर्यात्॥”

अन्यत्र भी आया है:-

जो अपने आत्मीयजन को भगवद्भक्ति का
उपदेश देकर उसके सामने खड़ी हुई मृत्यु से उसे छुटकारा
नहीं दिला सकता, वह गुरु नहीं स्वजन नहीं, पिता नहीं,
माता नहीं, इष्ट देव नहीं, ओर स्वामी भी नहीं है।

दोहा

“गुरुर्न सस्यात्स्वजनों न सस्यात् पिता न सस्याज्जननी न
सास्यात्।

दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च सस्यान्न मोचयेद् यः समुपेतमृत्युम्॥”

“हरहि शिष्य धन शोक न हरि
सो गुरु धीर नरक गह परखी।”

अर्थ:- जो गुरु शिष्य का धन हाथ लेता है और उसकी मुसीबत को दूर नहीं करता, ऐसा गुरु धीर नरक में पड़ता है। इसलिए गुरु का कर्तव्य है, कि वह शिष्य की जन्म मरण का हेतु अविद्या की निवृत्ति का हेतु आत्मज्ञान देकर जन्म मरण से मुक्त करे, यही गुरु का कर्तव्य है। इस प्रकार से शरण में आये हुए शिष्य को धीरज बधावे-

गुरु ने कहा:- हे विद्वान ! तू डर मत, तेरा नाश नहीं होगा। संसार सागर से तरने का उपाय है जिस मार्ग से यतिजन इसके पार गए हैं। वहीं मार्ग मैं तुझे दिखाता हूँ

“माभीष्ट विंद्धस्तवनास्त्यपायः संसार,
सिन्धोस्तरणेऽस्त्युपायः।

येनैव याता यतयोऽस्य पारं, तमेव मार्गं तव निर्दिशामि।”

शिष्य का कर्तव्य

गीता के चौथे अध्याय के 34वें श्लोक में बताया:-

दोहा

“तद्धिद्धि प्राणिपातेन, परि प्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं, ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनिः॥”

अर्थ:- हे अर्जुन तु उन ब्रह्मनिष्ठ व श्रोत्रिय महापुरुषों की विधि विधान से सेवा कर और सेवा से प्रसन्नचित हो जावे तब तू प्रश्न करना है। गुरुदेव मैं कौन हूँ? और कहाँ से आया हूँ। और कहाँ जाऊंगा ? इत्यादि प्रश्न करने पर तेरे प्रति वे महापुरुष इस तत्त्वज्ञान की कहेंगे। जिसकी जानकर तू मुक्त हो जायेगा। इसलिए गुरु की हर प्रकार से सेवा करनी चाहिए ताकि गुरु देव प्रसन्न हो जावे तो अपना कल्याण सहज हो जाये।

श्लोक

“यस्य देवे पर भवतार्यथा तथा गुरौ ।
तस्य ह्योते कथि तार्था प्रकाशते महात्मनः॥”

अर्थ:- जैसी श्रद्धा भक्ति परमात्मा में है वैसी गुरु देव में होनी चाहिए। ऐसी भावना से शिष्य के हृदय में ज्ञान का प्रकाश होगा। जिस प्रकाश के होने से आत्मा आनन्द मग्न हो जायेगा। सेवा करने योग्य गुरु केवल ब्रह्मनिष्ठ व श्रोत्रिय है। केवल भेष बनाने वाला गुरु धारण करने योग्य नहीं पाखण्डी गुरु तो स्वयं खड़ड़े में गिरते हैं और दूसरों को भी गिराते हैं। ऐसे पाखण्डी गुरुओं के चक्कर में कभी नहीं आना चाहिए।

श्लोक

“यथा कूर्मः स्वतनयान्ध्यानमार्गेण पोषयेत्
वयं दीक्षीपदशास्तुमानसः स्पत्तशाविद्यः॥”

अर्थ:- जिस प्रकार मादा कछुआ केवल ध्यान मात्र से अपने अण्डों का पोषण करती है। उसी प्रकार सच्चे गुरु भी शिष्य को हृदय से दीक्षा देते हैं।

श्लोक

“न पादुकापरी मंत्रो न देवः श्री गुरोः परः।
न हि शालीत् पर दीक्षा न पुण्य कुल पूजनात्॥”

अर्थ:- पादुका से परे कोई भी मंत्र नहीं है। श्री गुरु से परे कोई देव नहीं है। शक्ति दीक्षा से उत्तम कोई दीक्षा नहीं है। और कुल पूजन से परे कोई पुण्य नहीं है।

श्लोक

“गुरु मूलाः क्रियासवल्लोकेऽस्मिन् कुलनायिके।
तस्मात् सेव्यो गुरुर्नित्यं सिद्धिं भाक्ति संयुते॥”

अर्थ:- उपासना की समस्त क्रियाएं गुरुमूल से होती हैं। अर्थात् गुरु के द्वारा सही उपासना की पद्धति का ज्ञान होता है। अतः एव है कुलनायिके! सिद्धि प्राप्त

करने के लिए भक्ति युक्त होकर मनुष्यों को गुरु की नित्य सेवा करनी चाहिए।

श्लोक

“तावद्वाग्निर्भयं शोकोलोभमोह भ्रयादयः।
यावन्ना याति शरणं श्री गुरु भक्तावत्सलम्॥
तावद् भ्रमानी संसारे सर्व दुःख मलोभसाः।
न भवते सद्गुरौ भक्तितयविं छिवीरी देहिताम्॥”

अर्थ:- इस संसार में आतिजन्य भय होता है तथा शोक, लोभ, मोह और भ्रम आदि होते हैं। जब तक मनुष्य मनुष्य श्री गुरु चरण की शरणागति में नहीं आता, तब तक भक्तों पर भक्तावत्सल गुरु की कृपा और कल्याण नहीं होता। हे देवेशि! इस संसार में समरूप प्रकार के दुखों का भय तभी तक देह धारियों को घेरे रहता है और उन्हें भरमाता रहता है जब तक सद्गुरु में पूर्ण भक्ति भाव नहीं उत्पन्न होता।

श्लोक

“तावद्दाराधायोच्छ्रयः प्रसन्नोऽसौ यदा भवेत्।
गुरौ प्रसन्ने शिष्यस्य सद्यः पापदायो भवेत्॥”

अर्थ:- शिष्य को अपने गुरु की सच्ची आराधना तब तक करनी चाहिए जब तक श्री गुरुचरण

प्रसन्न न हो। जब गुरु प्रसन्न हो जाते हैं तो फिर शिष्य के पापों का क्षय हो जाता है।

श्लोक

“ब्रह्मा विष्णु महेशादि देवता मुनियोगिनः।
कुर्वन्त्यनुग्रहं तुष्टा गुरौ तुष्टे न संशयः॥”

अर्थ:- जब गुरुवर पूर्णतया संतुष्ट एवं प्रसन्न हो जाते हैं तो एक मात्र गुरु की प्रसन्नता होने पर ब्रह्मा, विष्णु तथा महेशादि देवता, मुनि और योगीजन सभी उस गुरु पर अनुग्रह करते हैं, इसमें तनिक भी संशय नहीं है।

श्लोक

“जन्म हेतुहि पितरौ, पूजनीयौ प्रयत्नतः।
गुरुर्विशतः पूज्यो धामधाम प्रदर्शकः॥”

अर्थ:- देहधारी माता-पिता जन्म देने के कारण पूजा के योग्य होते हैं और प्रयत्नपूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिए। लेकिन गुरु उनसे भी अधिक पूज्य होते हैं। क्योंकि वे धर्म-अधर्म के सही ज्ञान का प्रदर्शन कराते हैं।

श्लोक

“गुरोर्हितं हि कर्त्तव्य , मनोवाक्काराकर्मभिः।
अहिताचरणाद्धेवि , विष्ठायां जायते क्रिमिः॥
शरीर विच प्राणश्चय , श्री गुरु वज्रजयन्ति यै।
क्रिमिकोटपतगाड् व , प्रासुवन्ति न संराययैः॥”

अर्थ:- अपने गुरु का हित मन, वाणी और शरीर के कर्मों द्वारा पूर्ण रूप से करना चाहिए हे देवी! यदि कोई शिष्य किसी भी समय गुरु का अहित करने का आचरण करता है तो वह विष्ठा का कीड़ा बनकर नरक की यातना भोगता है। यदि कोई शिष्य शरीर, धन और प्राणों द्वारा अपने गुरु के वचन की अवेहलना करता है तो वह कृमि, कीट और पतंगत्व को प्राप्त होता है। इसमें तनिक भी संशय नहीं है।

रामायण में इस प्रकार से प्रमाण आया:-

काक भुशण्डजी ने अपने जीवन के साथ घटी हुई घटना का प्रसंग बताते हैं।

एक बार जब मैं शिव मन्दिर में बैठा हुआ शिव नाम जप रहा था, तब गुरुजी मन्दिर में आये तो मैंने अहंकार वस प्रणाम नहीं किया। जिससे मेरे गुरुजी शिव मन्दिर में जप करते हुए देखकर गुरुजी तो प्रसन्न हो रहे थे बल्कि शिव जी इस अपमान को सहन नहीं कर पाये

और मुझे श्राप दे दिया, कि जा तेरा गुरु आने पर भी तुने नमस्कार नहीं किया। इसलिए तू अजगर हो जा, ऐसी आकाश वाणी सुनकर मेरे गुरुजी बहुत दुःखी हुए और उन्होंने भगवान शिव से प्रार्थना कि जिससे कि भगवान प्रसन्न हो गये। भगवान प्रसन्न होकर कहे कि है विप्र तुम क्या मांगना चाहते हो तब मेरे गुरुजी ने प्रथम वरदान में कहा की आपकी भक्ति सदैव मेरे हृदय में निवास करे। व दुसरे वरदान में यूं मांगा कि यह तो बेचारा अविद्या मोह, माया में ग्रसित है, यह तो निति-अनिति, धर्म-अधर्म कुछ भी नहीं जानता है, व इसे किसी प्रकार की विधि का मालूम नहीं है। इसलिए इस मेरे अज्ञानी शिष्य को क्षमा करे। ओर आप के द्वारा दिए हुए श्राप से भी मुक्त करे। पुनः आकाश वाणी हुई कि मेरा कहा हुआ वचन असत्य नहीं हो सकता। एक हजार जन्म तो इसे लेना ही होगा। पर जन्म-मरण में होने वाला कष्ट इसे नहीं होगा। प्रत्येक जन्म में इसे राम भक्ति प्राप्त होगी। एक दश के कारण शिष्य ने गुरु को प्रणाम नहीं करने के कारण नाना प्रकार की योनियों में भटकना पड़ा।

जिस प्रकार से हाथी का स्नान करके धूल को अपने सिर पर उछालना।

श्रीमद् भगवद्गीता स्कंध 7 अं. 15वाँ में लिखा है।

**“यस्य साक्षाद् भगवतिज्ञान दीप प्रदे गुरौ।
मर्त्या सद्धी तष्या सर्व कुंजर शोचवत्॥”**

अर्थ:- ऐसे ज्ञान का दीपक जलाने वाला गुरु तो मानो साक्षात् भगवान ही है जो नर ऐसे सच्चे गुरु को पाकर गुरु की निन्दा करता उसके बारे में कहा गया है।

कुण्डली

**“विद्या पा सद्गुरुदेव से, सोहो जावे फिर दूर।
दुःख पावे भव माही, बणसी कूकर सूर।।
बणसी कूकर सूर, ऐसी नीच गति पावै।
लख चौरासी माहि, फिर-फिर गोता खावै।।
ज्ञानानन्द कृतधन बुरा, समझ महा कुरा।
विद्या पा सद् गुरुदेव से, हो जावे फिर दूर॥”**

अर्थ:- ऐसे सच्चे गुरु को पाकर जो नर गुरु की निन्दा करता है। अथवा कानों से श्रवण करता है। अथवा विद्या सीख कर मुकर जाता है। और श्री गुरुदेव का अपमान करता है उसे बड़ा पाप लगता है।

मनुरमृति में आया है:-

श्लोक

**“परिवादात् खरौ भवति, श्वानै भवति निन्दकः।
परिभोक्ता कर्मी भवति, कीटो भवति मतश्वरीः॥”**

अर्थ:- श्री गुरु से अभिमान करके अपने आपको बड़ा मानता है वो जीव गधे की योनि पाता है। और जो गुरु की निन्दा करता है अथवा सुनता है वे कुत्ते की योनि को पाता है। जो गुरु देव के धन को भोक्ता है वह सर्प, बिच्छु की योनि को भोक्ता है। और गुरुदेव की बड़ाई सुनकर जलता है वह मांसहारी जानवरों की योनि पाता है। इसलिए शिष्य को चाहिए की वह मर्यादा में रहकर नियम से ऐसी रहणी व करणी में जीवन जिये ताकि परलोक सुधार जाये। परलोक मार्ग आस्तिक एक ही अक्षर का उपदेश करता है तो उस गुरु के ऋण को पूरी पृथ्वी को दान में दे दिया जाये तो भी उऋण नहीं हो सकता। शास्त्रकारों ने कहा है कि जो गुरु के सम्मुख होकर भजन करता है तो उसका भजन सफल होता है। पर जो गुरु विमुख होकर जो भजन करता है उसको सप्त ग्राम मारने के बराबर पाप लगता है। श्री गुरु विमुख प्राणी का दर्शन योग्य नहीं है। जो गृहस्थ गुरु से विमुख है वो चांडाल के समान है। जैसे मदिरा के बर्तन में गंगाजल अपवित्र हो जाता है। उसी प्रकार गुरु विमुख इन्सान के हाथ का धूप, दीप, निवेद्य, पुष्प व दान देवता भी नहीं लेते हैं। उसके सर्व कर्म निष्फल है। इसलिए शिष्य को कर्तव्य कर्म का पालन करना है। सो इस प्रकार है :-

शरीर, वाणी, बुद्धि, इन्द्रियां और मन इन सबको रोक कर हाथ जोड़कर गुरु के सामने सदा साधारण अन्न, वस्त्र और वेश से रहे तथा गुरु से पहले उठे और पीछे सोये शिष्य को चाहिए कि बैठे हुए गुरु के सामने जाकर अपनी और आते हुए कुछ पग आगे जाकर देखते हुए से पीछे ढोड़कर बातचित करें। गुरु के समीप शिष्य शय्या और आसन सदा नीचा ही रखना चाहिए। अगर आंखों के सामने शिष्य को मन चाहे आसन पर नहीं बैठना चाहिए। गुरुदेव की देखा देखी नहीं करे, गुरु कहे जो करे इस पर एक दृष्टान्त है: -

एक महात्मा जी थे उनका एक शिष्य था। महात्मा ने अपने शिष्य से कहा कि अपने मन माने दंग से कार्य मत करना। मैं जो करूँ वो मत करना और जो मैं कहूँ वो ही करना। शिष्य कुछ दिनों तक गुरुजी की सेवा में रहा कुछ दिन पश्चात् वह अपने नगर गया और सोचने लगा कि गुरुजी को तो सारी दुनिया मानती है। और अपने को तो कोई नहीं मानता है। गुरुजी को दुनिया इसलिए मानती थी कि उनको फोड़े-फुन्सी को मुक्की की देकर ठीक करना आता था। उस शिष्य ने सोचा कि मेरे को भी यह काम करना चाहिए उसने भी यह काम करना शुरू कर दिया। एक दिन गाँव में एक बुढ़िया के गले में एक फोड़ा हो रहा था। वह उसको ठीक करने चला गया। वहा जाकर उसने

उस बुढ़िया के गले में जोर से मुक्का मारा तो वह बुढ़िया मर गई। बुढ़ियां के मरते ही गाँव वालों ने सोचा कि यह बुढ़ी औरत थी मर गई तो कोई बात नहीं है। इस कारण गाँव वालों ने उसे कुछ भी नहीं कहा और वह वहा से चला गया। उस गाँव से निकलकर वह दूसरे गाँव में चला गया और कहने लगा कि किसी के फोड़ा-फुन्सी हो तो उसकी ठीक करवा लो। संयोग से उस गाँव में एक जवान लड़के के गले में एक फोड़ा हो रहा था। वह शिष्य फोड़ा तो ठीक करना नहीं जानता था। उसने उस बुढ़िया की तरह उस लड़के के गले में जोर से एक मुक्का मारा तो वह लड़का थोड़ी देर में छट पटाकर मर गया। यह सब दृश्य देखकर गाँव वालों से रहा नहीं गया और उन्होंने उस शिष्य को पकड़कर राजा के पास ले गये और न्याय करने की फरियाद करने लगे राजा ने उस शिष्य को मृत्युदंड की सजा सुना दी। लेकिन उसको उसके गुरुजी की एक बात याद आ गई कि बेटे तेरे से कोई गलत कार्य हो जाये या कोई विपदा आ जाये तो मुझे जरूर याद कर लेना। सजा देते समय शिष्य को पुछा गया कि बता तेरी अन्तिम इच्छा क्या है तो शिष्य ने कहा कि मुझे मेरे गुरु देव से मिलवा दो। राजा ने शिष्य के गुरु को बुलाया। गुरुदेव के आते ही शिष्य गुरु के चरणों में गिर गया और कहने लगा कि गुरुजी मेरे से गलती हो गई मुझे आप इस मुसीबत से

निजात दिलाओं तो गुरुजी ने शिष्य से कहा कि बेटा चल ठीक है। अब मैं जैसा कहता हूँ तुम वैसा करना, शिष्य ने कहा कि ठीक है। गुरु देव यह कहकर गुरु और शिष्य दोनों आपस में झगड़ने लगे उनका झगड़ा देखकर राजा ने कहा कि क्या बात है क्यों झगड़ा कर रहे हो तब गुरुजी ने कहा कि राजा बात ऐसी है कि आज के दिन जिसे फांसी लगेगी वह स्वर्ग का राजा बनेगा इसलिए मैं मेरे शिष्य से कह रहा हूँ कि फांसी मुझे लग जाने दो और शिष्य कह रहा है कि नहीं फांसी मुझे लग जाने दो यह मेरे से पहले स्वर्ग का राजा बनना चाहता है। यह बात सुनते ही राजा बोलता है कि फांसी तुम्हारे बाप की है क्या, यह कह कर वह अपने सेवकों से कहता है कि इस शिष्य को इस फांसी से हटाओं और यह फांसी मेरे लगाओं। इस प्रकार राजा फांसी पर लटकर मर गया और गुरु व शिष्य अपने गन्तव्य पर चले गये।

ऐसे ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु कितने दयालु होते हैं। शिष्य ने कितने अवगुण किये उसके बावजूद भी गुरु ने उस पर अनुग्रह किया और मृत्यु के मुखार बिन्द से बचा लिया। इसलिए शिष्य का कर्तव्य बनता है कि सदैव गुरु परब्रह्म पर दृष्टि ही रखे कभी भी दोष दृष्टि न डाले। गुरु से ज्ञान लेकर मुक्त जाता है। तो उसकी किस प्रकार दुर्गती होती है।

इस पर एक दृष्टांत :-

एक ब्वाला रोजाना नदी के किनारे गायों को चराने जाया करता था। तो उसने नदी में एक पक्षी को देखा तो वह पक्षी जल में से मछली को उठाकर ऊपर आसमान की तरफ फेंककर अपने मुँह में झेल लेता, इस पक्षी की क्रिया को देखकर ब्वाले ने भी इस प्रकार करने का प्रयास किया और वह अपनी लकड़ी को आसमान में फेंकने व अपने मुँह में झेल लेता ऐसा करते-करते अभ्यास हो जाने के कारण वह एक दिन लोहे के भाले को भी अपने मुँह से झेलने लग गया। जिसके कारण वह अपने करतब को गाँवों व शहरों में दिखाने लगा। जिससे उसे धन भी मिलने लग गया। फिर एक दिन उस ब्वाले को किसी गाँव में एक ऐसा व्यक्ति मिला तो उस व्यक्ति ने ब्वाले से पूछा कि तूने यह कला/विद्या कहाँ से प्राप्त की और तेरा गुरु कौन है तो उस ब्वाले ने स्पष्ट कहा कि मेरा कोई गुरु नहीं है और मैं ही इस विद्या को अपने आप ही सीखा है। तो उस व्यक्ति ने कहा कि यह करतब फिर से दिखाओ तो ब्वाले ने फिर से दिखाया तो वह लोहे का भाला उसके गले से पार हो गया जिसके कारण उस ब्वाले की मृत्यु हो गई। इससे यह स्पष्ट होता है कि कभी भी व्यक्ति को गुरु से विद्या पाकर व्यक्ति को कृतधनी नहीं बनना चाहिए। कृतज्ञ ही रहना चाहिए एवं गुरु महिमा का ही बखान करना

चाहिए। और गुरु द्वारा कहे हुए वचनों में बिलकुल भी संशय नहीं करना चाहिए। और जो इंसान गुरु के कहे वचनों में संशय करता है। वो दुःखी ही रहता व कभी सफल नहीं हो पाता।

इस दृष्टांत का सार है:-

एक वैश्य/बनियाँ ने अपने प्रदेश के प्रधान संत से कहा मुझे शीघ्र से शीघ्र ईश्वर प्राप्ति का उपाय बताओ। संत बता तो दोगे किन्तु कर नहीं सकेगा। बनियाँ मैं अवश्य करूंगा, आप तो बतावें। संत निर्जन वन में जाकर वहा के पीपल वृक्ष के नीचे चिता चुनकर अग्नि लगा देना फिर पीपल पर चढ़कर उस अग्नि में कूद जाना। अग्नि में पड़ने से ही ईश्वर तुझे झेल लेंगे। उसने वन में जाकर वैसा ही किया और पीपल पर चढ़कर सोचने लगा साधु ने मजाक में कह दिया है। अग्नि में कूदने से शरीर ही भस्म होगा। ईश्वर कैसे मिल सकेगा? नीचे उतर आया फिर सोचा साधु तो अच्छे है, वे मिथ्या तो नहीं बोलते। फिर चढ़ा और पूर्ववत् विचार करके उतर आया। एक चोर राजमहल में चोरी करके धन लाया था। उसने इससे उतरने-चढ़ने का कारण पूछा। बनियाँ ने अपनी उक्त कथा सुना दी। चोर ने सोचा संत तो सत्य बोलते हैं। मेरे पीछे राजपुरुष लगे हैं। वे मुझे पकड़ कर मारेंगे भी और धन भी छीन लेंगे तथा जेल में भी डालेंगे। अतः क्यों न धन देकर संत वचन ले लूं। फिर

चोर ने धान देकर संत वचन ले लिया। बनियां भी प्रसन्न हो गया। इतने में राजपुरुष आ गये। वैश्य/बनियां के पास धान मिलने से उसे पीटा। धान भी छीन लिया और जेल में भी डाल दिया। चोर पीपल पर चढ़ कर अग्नि पर कूदा कि बीच में ही भगवान ने झेल लिया और चतुर्भुज रूप का दर्शन देकर कृतार्थ कर दिया। उक्त कथा से सिद्ध होता है कि जो गुरु वचनों को सत्य नहीं मानता सो अपने कुल में कल्पश (पाप) रूप ही होता है। देखो संशय करके उक्त बनियां साहूकार था किन्तु चोर हो गया। चोर ने सत्य माना तो भगवान को प्राप्त हो गया। इसलिए गुरु के प्रति अपने आप की कुर्बानी देने कि क्षमता शिष्य में होनी चाहिए।

दृष्टांत:- महाराज रामदासजी के 750 शिष्य थे, ये महाराज की सेवा किया करते थे। महाराज के शिष्यों में शिवा को लेकर संशय पैदा हो गया। कि महाराज तो हमेशा शिवा, शिवा ही पुकारते हैं। इससे शिष्यों में ईर्ष्या कि भावना पैदा हो गई। और अपने गुरु के प्रति उँच-नीच और अमीर-गरीब की भावना प्रकट होने लगी। इस सारी वार्ता का पता जब महाराज जी को चला तो महाराज ने शिष्यों में पैदा हुए संशय को मिटाने के लिए उन्होंने अपनी जाँघ पर एक आम बाधाकर सो गये और प्रातःकाल जोर-जोर से चिल्लाने लगे और आवाज सुनकर सभी शिष्य एकत्रित हो गए और सभी शिष्यों ने आकर महाराज

जी से पूछा कि रात ही रात में आपके ऐसी कौनसी बिमारी हो गई जिसके दर्द के मारे आप चिल्ला रहे हो। तब महाराज ने कहा कि रात ही रात एक ऐसा फोड़ा निकला है कि जिसके दर्द के कारण मेरी मृत्यु ही निश्चित जान पड़ रही है। अतः इसका उपाय तुरन्त ही करना चाहिए। तब एक शिष्य ने कहा महाराज इसका क्या उपाय है? तब महाराज ने उस फोड़े का उपाय बताया कि कोई भी शिष्य अपने मुँह से इस फोड़े को पूरा का पूरा चूस ले तो ही मेरी रक्षा हो सकती अर्थात् मैं बच सकता हूँ और यदि वह पूरी तरह नहीं चूस सका तो उसकी मृत्यु हो जाएगी। ऐसा सुनते ही सभी शिष्य आश्रम छोड़कर नौ दो ग्यारह हो गये। इसकी सुचना शिवा को लगी है तो वह वहा से इस प्रकार दौड़ा कि उसके शरीर पर पहने हुए कपड़े व पैरो की जुतियों का भी पता न रहा और वह बहुत उतावले से आश्रम की तरफ दौड़ा वहा पहुँचने पर शिवा को बताया कि तुम तो परिवार वाले हो इसलिए इस प्रकरण से दूर रहो। शिष्यों ने शिवा से कहा कि यह फोड़ा बहुत खतरनाक है तुम मर जाओगे। तब शिवा ने उनसे कहा कि मेरे मर जाने से तो बहुत से शिवा मेरे गुरु पैदा कर देंगे परन्तु गुरु के मर जाने पर हम सब मिल कर भी एक शिवा पैदा नहीं कर सकते इसलिए मैं अपने प्राणों की परवाह नहीं करता हूँ और गुरु की शरण में जाकर कहने लगा कि यह क्या हो गया है, तब गुरु ने शिवा से कहा कि रातों रात ऐसा फोड़ा हुआ है, कि मुझे

जीवित देखना चाहते हैं तो इस फौड़े को इस प्रकार चुसना कि मेरी सारी पीड़ा दूर हो जाए, ऐसा कहते ही शिवा तुरन्त ही चुसने लगा और चुसता हुआ मन ही मन में विचार करने लगा कि इस प्रकार का फौड़ा मेरे गुरु जी को रोजाना ही निकला करे जिससे मेरे गुरु के पैर से लिया हुआ चरणामृत मेरे गुरु रसावसन का आनन्द की प्राप्ति हुई इस प्रकार गुरु का रसावसन का लाभ मुझे हमेशा ही मिलता रहे। ऐसा भाव अगर शिष्य में हो तो उसका कल्याण होने में कतई संशय नहीं है। गुरु के प्रति शिष्यों को सदैव ही श्रद्धा दृष्टि बनाए रखनी चाहिए। श्रद्धा से परम लाभ की प्राप्ति होती है।

दृष्टान्त:- चार ढोगी साधुओं ने राजा के घर चोरी करने का मानस बनाया और राजमहल में पहुँच गये। राजा व रानी ने उनका बड़ा आदर सत्कार किया, और उनसे दस-पन्द्रह दिन ढोगी साधुओं ने राजा के यहाँ दरबार में ख़ुब मौज ली, एक दिन राजा शिकार को निकल जाता है। व पिछे से ढोगी साधुओं ने मौका देखकर मन में विचार किया कि आज अच्छा मौका है। ऐसा अवसर पाकर ढोगी साधुओं ने रानी को ठगने का विचार किया और रानी से कहने लगे कि आज हमारी इच्छा है कि आज हम यहाँ से जाना चाहते हैं। आपको जो भी दान - दक्षिणा देनी हो दे दो, रानी ने श्राप का भय मानकर उन्हें आभूषण, हिर,

मोती आदि दे दी, जिससे भी दोगी साधुओं कि इच्छा पूरी नहीं हुई और साधुओं ने उस रानी कि हत्या कर दी और राजमहल का सारा खजाना लूट कर ले जा रहे थे कि मार्ग में साधुओं कि भेंट राजा से हो गई। तो राजा ने कहा कि आप कहा जा रहे हो तब दोगी साधुओं ने कहा कि रानी ने तो हमें विदा कर दिया है, इसलिये हम जा रहे हैं तब राजा ने कहा कि , आप वापस राजमहल में चलीए आपको मैं स्वयं विदा करूँगा। और राजप्रसाद में ले जाकर यथो उचित आसनों पर बैठाया और जोंही राजा महल में अन्दर पहुँचा तो उसें रानी का कटा हुआ सिर दिखाई दिया, तब राजा के मन में अनेक प्रकार के विचार उठने लगे और राजा यह सब कैसे हुआ, कब हुआ, किस कारण हुआ। इस तरह विलाप करने लगा, और मामले की उजागर होता देखकर साधुओं ने भयभीत होकर राजा से सारा वृत्तांत कह दिया, और अपराध कबूल कर लिया, लेकिन फिर भी राजा को इस बात का विश्वास नहीं हुआ, और राजा कहने लगा कि मैंने ङाकुओं कि सेवा नहीं की है। मैंने तो साधु संतों कि सेवा कि है। इसलिए मैं इस बात को स्वीकार नहीं करता फिर राजा ने जल से भरी झारी मँगवाई व चारों साधुओं के चरण धोए और उस चरणामृत को लेकर ज्योंहि रानी के पड़े शव पर छिड़काऊ मारता है तो शव वह जीवित हो

जाता है जीवित शव को देखकर साधुओं को आश्चर्य होता है

इस प्रकार से राजा का भाव गुरु के प्रति कितना अगाध है उसको देखकर दोगी साधुओं के स्वभाव में बदलाव आ गया। और गुरु के प्रति श्रद्धाभाव जाग्रत हो गया और गुरु पर श्रद्धा का विश्वास हुआ वह भी सच्चे संत बन गये।

तीन प्रकार के शिष्य हुआ करते हैं :-

1. उत्तम अधिकारी। 2. मध्यम अधिकारी।
3. कनिष्ठ अधिकारी।

1. उत्तम अधिकारी की परिभाषा:- मल-विक्षेप नहीं हो, चार साधन सम्पन्न हो (विवेक, वैराग्य, षष्ठ सम्पत्ति, मुमुक्षुता) वो ही उत्तम अधिकारी है, वो ही गुरु के मुखारविन्द से महावाक्यों का अर्थ सहित श्रवण कर सकता है।

2. मध्यम अधिकारी की परिभाषा:- मल-विक्षेप पूर्ण रूप से धुले हुए नहीं होते व चारों साधन भी पूर्ण नहीं होते, वह मध्यम अधिकारी है, वह उपासना का अधिकारी है।

3. कनिष्ठ अधिकारी की परिभाषा:- मल-विक्षेप ज्यों के त्यों रहते हो, चारों साधन सम्पन्न नहीं होता हो, वो कनिष्ठ अधिकारी है। वो तो निष्काम रूप सेवा करें।

इस प्रकार से गुरु की सेवा तो तीनों अधिकारीयों को ही करनी चाहिए तीन चीजे आजीवन सेवनीय है (सत्संग,

स्वाध्याय,सद्गुरु)गुरु की चार प्रकार से सेवा होती सो
शिष्य को करनी चाहिए(तन सेवा,मन सेवा,धन
सेवा,वचन सेवा)

प्रश्न:- तन सेवा क्या है ?

उत्तर:- तन सेवा से आश्रम में इमाडू निकालना,पैर चम्पी
करना,कपड़े आदि धोना।

निश्चल दास जी महाराज ने बताया है।

“तन करि बहूंसेवा विस्तारै, आज्ञा गुरु की कबहुं न टारै”

प्रश्न:- मन सेवा क्या है?

उत्तर:- मन से गुरु के गुणगान गाना ,कभी भी गुरु के
प्रति दोष नहीं रखना ।

“मन मैं प्रेम रामसम राखौ
हे प्रसन्न गुरु इम अभिलाखौ
दोष दृष्टि सुपने नहि आनै।
हरि हर ब्रह्म गंग रवि जानै।
गुरु मूरति को हिय मैं ध्याना।
धारे जो चाहै कल्याणा।”

प्रश्न:- धन सेवा क्या है?

उत्तर:- धन से गुरु का सम्मान करना चाहिए,

“पत्नि,पुत्र,भूमि, दासी।

दास, द्रव्य, ब्रह्म, ब्रीहि विनासी।

**धन पद इन सबहिन के भाखै।
हे गुरु सरन दूरितिहि नाखै।”**

प्रश्न:- वाणी सेवा क्या है?

उत्तर:- वाणी के द्वारा गुरु के गुणगान करना चाहिए।

**“भाषत गुन गन गुरु के, बानी शुद्ध।
दोष न कबहुँ, अर्पन करि इम बुद्ध॥”**

1.

दोहा

**सद्गुरु आप अवनाशी, काँटों भव की पाश।
ज्ञानानन्द शरणागत, पूरण करो मम आस॥**

भजन

**आप गुरु अवनाशी, पार करो भव जहाज।
पार करो भव जहाज, म्हारी अरजी सुनो गुरु
आजा।टेरा।**

**असंख्य जुगा से भूल में जी, करतो रीयो अकाज।
बार-बार काल मारयो जी, ज्यों चिद्ग्यों को बाज।।
मो ममता म आय पस्योजी, भूल गया जी सब नाज।
काम क्रोध का बनया बादला, हंकार रीयो गाज।।
आप गुरु सामर्थ्य स्वामी, सुनावो महावाक्य साज।
जीव ब्रह्म का भेद मिटाओं, बगड़ों सुधारों काज।।
अरज करू कर जोड़ के, सुनिय गरीब निवाज।**

ज्ञानानन्द शरणागत आयो, आप बचाओं लाजा॥

2.

दोहा

नया दुबी भव सागर, कोई न त्यारणर हार।

ज्ञानानन्द कहाँ जाऊ, आयो धाके द्वार॥

भजन

मैं शरण पड़्यों गुरु देव, मेरी पार करो नया।टेरा

तीन दोष अन्तर में भारी, स्वरूप भूल सीया॥

तीन काण्ड वेदों का बताओं, आप से अरज किया॥

पाँच तत्त्व और पच्चीस प्रकृति, यामे उलझ सीया॥

शब्द स्पर्श रूपरस गन्ध, याने मार्ग बन्ध किया॥

त्रिगुण माया अटपटी जी, यामे भूल गया॥

काम क्रोध मद लोभ, मोह ने बेझा डूबों सीया॥

ज्ञान जहाज लेकर आवों, आपको अरज किया॥

ज्ञानानन्द शरणागत आयो, तन-मन-धन वार दिया॥

3.

दोहा

गुरु आप बिन और नहीं, जग त्यारण जगदीश।

ज्ञानानन्द शरणागत, जरा मुझ पर कीजे रीस॥

भजन

सद्गुरु देवा वो कृपा किजे दीन पैं

म्हारों जन्म-मरणरो दुःख मेंट आयो मैं शरण तेरी॥टेरा॥

ज्ञान विज्ञानये भवित भावना मैं नहीं जानता।

म्हाने खोल समझाओं सारी रीता।

वाच्य और लक्ष्य का भेद कैसे जानों मैं

जीव ब्रह्मकर दो एका।

जीवन मुक्ति का राज मोहे समझाओं।

मोहे पहुचावों विद्वह में टेठा।

ज्ञानानन्द आप से करे विनती।

मन राखो सेवा में आज।

4.

दोहा

गुरु आप छोड़ कहां जाऊ, और नहीं कोई ठाम।

ज्ञानानन्द शरण में, अब क्या दुझे से काम ॥

भजन

राखोजी सद्गुरु शरणगत की लाजा।

मैं भवसागर माई झूल रह्यो, डूब रही मेरी जहाजा।
देरा।

खेच किनारे आप लगाओं, सद्गुरु जी सिरताजा।

तीन ताप कि आग लगी है जल रीयों में आज।

ज्ञान बारीस आप बरषाओं, सुख वीणा री साजा।

तत्त्वस्मि उपदेश सुनाओं, वाच्य लक्ष्य राज।

अहं ब्रह्म अनुभव दे ओ, परमार्थ के काजा।

तू दाता दुःख भजना, मैं तेरो मोह-ताजा।

ज्ञानानन्द शरण में तेरी, ज्ञान भवित के काज॥

5.

दोहा

सूरज सम गुरु आप ही, मेटण तम अंधकार ।
ज्ञानानन्द शरणागत, एक त्थेरी ही आधार ॥

सतगुरु देवाओ सुन लो मारी विनती ,
मैं दुखी बड़ो बेहाल, पिलाओ मोही ज्ञान जड़ी । टेर ।
गंगा यमुनाओ तिर्थ मैं नहा लिया ।
यासे मिट्यो नहीं मन को संताप ॥1॥
कर्म उपासनाओ किया मेनें भौ भारी ।
यासै पायो नहीं विश्राम ॥2॥
अगम अपारीओं महिमा आपरी ।
सुन आयो शरणा रे माहि ॥3॥
माणक मोतीओं गुरुजी मांगु नहीं ।
मन राखो चरणारो दास ॥4॥
वेद महावाक्यओ खोल समझाएदो ।
यही ज्ञानानन्द की पुकार ॥5॥

गुरु आरती

औम जय सतगुरु स्वामी, प्रभू जय सतगुरु स्वामी ।
जड़ चेतन का मालिक , सब का अन्तरयामी । टेर ।
तन मन सब निर्मल, निर्मल है गुरु वाणी ।
सुनत परम सुख उपजे , मिटज्या चारो खानी ॥1॥

कखणा कर कखणा के सागर ,ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मवेता ।
भव बन्धन सब काटो, मैं शरण आपकी लेता ॥2॥
दुख दरिद्र पास नहीं आवे ,जीवन मुक्ति देवें ।
सतसंग भक्ति देके, अवगुण हर लेवें ॥3॥
सतगुरु सम देवा नहीं, देवन पती देव ॥
काल क्रम भव व्याधि, पल में हर लेवा ॥4॥
तन मन धन सब कुछ है तेरा, कुछ भी नहीं मेरा ।
तुम हो सो मैं हूँ, मैं हूँ सो तुमेटो भव फेरा ॥5॥
सतगुरु स्वामी जी की आरती, जो कोई नर गावे ।
ज्ञानानन्द शरण सतगुरु की, अमरापुर पावें ॥6॥

श्री गुरु अष्टकम्

1.

**सुरूप शरीर वचना सुत, धन सुमेख समान ।
गुरु चरण, प्रेम नहीं तो, सब कुछ थोथा जान ॥**

2.

**चारो दिशा में यश हो, वैभव होय अपार ।
प्रेम नहीं गुरु चरण से, वह यश भी बेकार ॥**

3.

**धन जन माया मोखली, प्रारब्ध से हि पाय ।
भक्ति नहीं गुरु चरण की, तत् प्रारब्ध की थाय ॥**

वेद षटशास्त्र याद हो कविता करे विस्तार।
लग्न नहीं गुरु चरण में तो सब कुछ बेकार ॥

5.

महिमा बड़ी संसार में, पूज्य देश परदेश।
प्रेम नहीं लगे गुरु चरण से, झूठा यह सभी भेष ॥

6.

भूमण्डल के राजा भी, पूजे जाके चरण।
मन नहीं लगे गुरु चरण तो, जीते जी मरण ॥

7.

घर परिवार छोड़ सभी, करे निरन्तर वास।
आश नहीं गुरु चरण की, तबतक रहे उदास ॥

8.

यशोदान प्रताप से, चाले साली-साल।
प्रिति नहीं गुरु चरण में, तो जीवन कगाल ॥

9.

माणि मुक्तादि रतन सभी, ओर सकल संसार।
गुरु के श्री चरण बिन, पावे ना मोक्ष द्वार ॥

10.

जो राजा यति सन्यासी, सदाचार गृहस्थ।
ज्ञानानन्द गुरु अष्टकम्, दिलावे मोक्ष का पथ ॥
इति गुरु अष्टकम् सम्पूर्णः।



हे सौ सुन्दर है सदा, चाहि सौ चाहि।
चाहि सौ ही प्रगट देखिये, हे सौ दिखे चाहि ॥१॥

लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल।
लाली देखने में गई, मैं भी हो गई लाल ॥२॥

सुन्दर आत्म अचल देह, देह चाले नही छानी।
कूप ठोर का ठोर, चलत है चड़स रूपानी ॥३॥

बादल दौर जात है, दौरत दीसे चन्द।
देह संग से आत्मा, चलत कहे मति मंद ॥४॥

परमेश्वर अरु परमगुरु, दोनों एक समान।
सुन्दर कहत विशेष यह, गुरु से पावे ज्ञान ॥५॥